श्रीचैनबिहारिणे नमः

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः श्रीहरिव्यासदेवाचार्याय नमः

श्री गोपालदास जी महाराज की वाणी

श्रीयुगल कृपा निधि



प्रेरक—
म० श्रीरूपकिशोरदासजी महाराज
(वृन्दावन)

प्रकाशक—
सर्वश्री म० श्रीराधेश्यामदासजी
(काठिया)

सम्पादक—
जयकिशोरशरण

श्रीचैनबिहारिणे नमः

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः श्रीहरिव्यासदेवाचार्याय नमः

वृन्दावन–कलानाथौ हृदयानन्दबर्द्धनौ ।
सुखदौ राधिकाकृष्णौ भजेऽहं कुञ्जगामिनौ ।।

श्रीगोपालदासजी महाराज
की वाणी

श्रीयुगल कृपा निधि



प्रेरक–
म० श्रीरूपकिशोरदासजी महाराज
(वृन्दावन)

प्रकाशक–
सर्वश्री महन्त श्रीराधेश्यामदास काठिया

सम्पादक–
जयकिशोरशरण

प्रथम संस्करण
१००० प्रतियाँ

पुरुषोत्तम मास
सं० २०५६ सन् १९९९

न्यौछावर
२५ रुपये मात्र

अनुक्रमणिका

पुस्तक प्राप्तिस्थान :–

१. चैनबिहारी कुञ्ज, वृन्दावन । २. निकुञ्ज वन, वृन्दावन ।

मुद्रक : श्रीकृष्णानन्द प्रेस, वृन्दावन फोन 0565-443545

राधां कृष्णस्वरूपां वै कृष्णं राधास्वरूपिणम् ।
कलात्मानं :नेकुञ्जस्थं गुरुरूपं सदा भजे ।।



रसिक सन्त शिरोमणि श्रीगोपालदासजी महाराज

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

सन्त शिरोमणि बाबा श्रीगोपालदासजी का संक्षिप्त जीवन संस्मरण

अखिल भुवनानन्दित त्रैलोक्य पावनी निवृत्ततृष्ण सन्त–मुनिजन सेवित भगवत्स्वरूपा ब्रजभूमि की महिमा गरिमा से कौन अपरिचित हो सकता है ? क्योंकि अखिल कोटि ब्रह्माण्डनायक गोलोकाधिपति श्रीराधासर्वेश्वर की यह नित्यलीला विहारस्थली है । स्वयं श्यामसुन्दर रसिकशेखर रासबिहारी जहाँ से एक कदम भी बाहर जाना पसंद नहीं करते–"**वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकम् न गच्छति ।**" ऐसी कृष्णाकर्षिका दिव्य चिन्मयी रसमयी प्रेममयी ब्रह्म स्वरूपात्मिका ब्रजभूमि की महिमा से परिचित होने पर ऐसा कौन भक्त हृदय सज्जन व्यक्ति होगा जो अपना सर्वस्व त्यागकर इस मंगलमयी मंगलप्रदातृ जननी ब्रजभूमि के अंक का वात्सल्य प्राप्त करना न चाहेगा ।

यही कारण है कि देश–देशान्तर से अनेक भक्त सज्जनों ने ब्रजभूमि में आकर भगवत्प्रेमी रसिक सन्तों का आश्रय एवं उपदेश ग्रहणकर भजन साधन परायण होकर प्रिया–प्रीतम की अनुकम्पा प्राप्तकर उनकी दिव्य लीलाओं को अन्तःचक्षुओं से अवलोकन करते हुए अपने मानव जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त किया ।

इसी शृंखला में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के एक विशिष्ट शिष्ट महापुरुष रसिकप्रवर सन्त शिरोमणि बाबा श्रीगोपालदासजी महाराज हुए जिनके द्वारा रसिकजन जगत के जीवन में एक अद्भुत प्रकाश एवं नव स्फुरणा की उपलब्धि हुई । उनका सत्संग प्राप्त करने वाले उनके उपदेशों को दत्तचित्त होकर पान करते थे परन्तु जैसे–जैसे सुनते थे वैसे–वैसे ही श्रवण की तृष्णा बढ़ती ही जाती थी । उनके उपदेशों से ऐसा प्रतीत होता था मानो वे किसी की सुनी–सुनाई या पढ़ी हुई बात न कहकर अपना अनुभव ही कह रहे हों ।

सभी महापुरुषों ने भौतिक जगत की अपेक्षा आध्यात्मिक जगत को विशेष महत्व दिया है । यही कारण है कि प्रायः सन्तपुरुषों के जीवन में जितनी अध्यात्म की अनुभूति प्राप्त होती है उतनी उनके जागतिक जीवन की जानकारी नहीं मिल पाती । तथापि इनके जीवन का परिचय संक्षेप में इस प्रकार मिलता है–

आपका जन्म उत्कल प्रान्त के जिला गन्जाम (उड़ीसा) में हुआ था । आपने एक श्रेष्ठ सम्पन्न ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर माता–पिता के यश को प्रकाशित किया । बाल्यावस्था से ही आपके हृदय में पूर्व संस्कारवश भक्ति विराजमान थी । निखिल कल्याण के स्वामी श्रीराधासर्वेश्वर के चरणों में जिनकी अनुरक्ति हो जाती है उनका फिर संसार के प्रति आकर्षण कैसे सम्भव हो सकता है ? अतएव भगवत्कृपा से संसार से विरक्त हो लगभग २०–२५ वर्ष की अवस्था में अविवाहित ही ब्रज में आए । श्रीब्रजेश्वरी राधारानी को अपने द्वार पर समागत शरणागत का बड़ा ध्यान रहता है । अतः श्रीहरि की कृपा से तत्कालीन श्रीराधाकृपा प्राप्त श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायानुयायी सर्वोत्कृष्ट परमसिद्ध रसिक श्रीकिशोरीदासजी महाराज का दर्शन गहंवर वन गोपालकुटी (बरषाना) में प्राप्त हुआ । आप अलवर के निवासी तथा जाति के पंजाबी थे । आपके गुरुदेव श्रीमदनमोहनदासजी जो ''श्रीजी'' मन्दिर, बरषाना में सेवा–पूजादि का सम्पूर्ण प्रबन्ध करते हुए भण्डारी पद पर नियुक्त थे । इसी कारण साधू समाज में आपका तथा गोपालकुटी भण्डारी बाबा के नाम से प्रसिद्ध है । यहाँ श्रीकिशोरीदासजी का दर्शन ही नहीं अपितु उनके निश्छल उपदेशामृत से प्लावित होकर उनकी चरणसेवा में आत्मसमर्पित हो गए । आपने भी इन्हें सुयोग्य सुपात्र जानकर वैष्णव दीक्षा देकर कृपापात्र बनाया । इस प्रकार एक सच्चे सन्त गुरुदेव की सेवा प्राप्त होनेपर अपने को कृत–कृत्य मानने लगे । निष्कपट भाव से गुरुसेवा करते हुए गुरुदेव से भागवतधर्म की शिक्षा प्राप्त की । उनकी सेवा से सन्तुष्ट हो गुरुदेव ने भजनसेवोपासना की पद्धति सिखाई । कतिपय समय गुरुदेव के आश्रम में रहने के उपरान्त गुरुजी से आज्ञा प्राप्तकर श्रीधामवृन्दावन में आए । श्रीधाम में भी उस समय बड़े उच्चकोटी के रसिक सन्तों का निवास था । अतः गुरुदेव की कृपा के सत्परिणाम स्वरूप उन रसिक श्रेष्ठ सन्त महत्पुरुषों का संग प्राप्त हुआ । बाबा श्रीप्रियाशरणजी महाराज, श्रीविशाखाशरणजी एवं पिसायेवाले बाबा, श्रीकुंजबिहारीशरणजी महाराज आदि महापुरुषों का सत्संग प्राप्त करते हुए किवारी वन में निवास करते थे । इसी समय इनको जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज द्वारा प्रणीत महावाणी का श्रवण–मनन– अनुशीलन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ । श्रीमहावाणी में आपकी अनन्य निष्ठा के साथ आपको अगाध चिन्तन प्राप्त था ।

आप किवारी वन में ब्रह्ममुहुर्त में उठकर श्रीयमुना किनारे पानीघाट जाकर स्नानादि करते तथा प्रियाप्रीतम की नित्य दिव्य लीलाओं का चिन्तन करते तथा मानसिक सेवा के द्वारा प्रियाप्रीतम को लाड़ लड़ाते । इस प्रकार भजन सेवा से निवृत्त

होकर पानीगाँव में जाकर मधुकरी माँगकर लाते और खाकर पानीघाट आश्रम (परिक्रमा मार्ग) में विश्राम करते । यहीं पर आजाद पानीघाटवाले अनन्त श्रीविभूषित श्रीनरहरीदासजी महाराज त्यागीजी से भी बराबर सत्संग होता था फिर सांयकाल के समय किवारी वन में जाकर विश्राम करते । इस प्रकार उनकी दैनिक जीवन साधना कुछ वर्षों तक चलती रही । फिर यहाँ से भी भरतिया और चौमा ग्राम के निकट जंगल में एक झोपड़ी बनाकर एकान्त निवास करते हुए भजन साधनोपासना में संलग्न रहे । यहाँ रहते हुए चौमा, भरतिया व आसपास के लोगों को सन्मार्ग का उपदेश देकर भगवत्परायण बनाया । आज भी बहुत बड़ी संख्या में उनके शिष्य उन ग्रामों में रहते है ।

गुरुजी के निकुञ्जवास होने पर इच्छा न होने पर भी आपको गहवर वन गोपाल कुटी (बरषाना) की महन्ताई का भार सम्हालना पड़ा । जब से आपने गहवर वन गोपाल कुटी में रहना प्रारम्भ किया तब से आश्रम का उत्तरोत्तर विकास होता रहा । दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, अलवर, जयपुर आदि दूर–दूर के लोगों ने आकर शरण ग्रहणकर आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया । सन्त सेवा में आपकी बड़ी रुचि थी । अपने हाथों से रसोई बनाकर सुन्दर–सुन्दर भोग गोपालजी को लगाकर सन्तों की सेवा करते । सन्त भी उनकी सेवा से संतुष्ट होकर चकित होते थे ।

गौ सेवा में आपकी अनुपम निष्ठा थी । अधिकांश लोग तो प्रायः दूध आदि के प्रलोभन से गौसेवा करते है लेकिन आपकी निस्वार्थ गौ सेवा भाव को देखकर आश्चर्य होता था, वास्तव में इसी को सेवा कहते है । स्वार्थपरता से की गई सेवा नहीं वह तो व्यापार हो सकता है । अतः आपने गौसेवा करते हुए कभी भी उन गायों का दूध नहीं पीया, बछड़े को ही सारा दूध पीलाते थे । गाय व बछड़े के गले में कभी भी रस्सी नहीं बाँधी, खुला ही रखते थे । जो कुछ मेवा–मिष्ठान्न सेवक लाते, स्वयं न खाकर गैया को ही खिलाते थे । गैया हाथी के बच्चे के समान हृष्ट–पुष्ट रहती । मन करता की गौ माताओं के दर्शन ही करते रहें । आपकी आवाज को सुनते ही तत्काल गैया पास आकर चाटने लगती । गैया मैया की सेवा में और गोपालजी की सेवा में आपने किञ्चित भी अन्तर न मानकर बड़ी तन्मयता से सेवा करी । यही कारण था कि अन्तिम अवस्था में भी उन्हें गौसेवा की चिन्ता सताती रही और गोपालजी की स्मृति अन्तिम समय में भी बनी रही । यही तो मानव जीवन का परम पुरुषार्थ है ।

आपको हिन्दी, उड़िया, बंगला एवं संस्कृत का अच्छा बोध था । गहनतम विषय को समझने की उनमें क्षमता थी तथा उस विषय को सरल, सुबोध भाषा में समझाने की योग्यता थी । एकान्त प्रिय एवं शान्त, सरल प्रवृत्ति, उदारता से परिनिष्ठित थे । अधिकांश समय लाड़िली लाल की सेवा एवं उनकी लीलाओं में ही निमग्न रहते । कभी–कभी अपनी अनुभूतियों को बताने के लिए उन्हें विवश होना पड़ता था । प्रियाप्रीतम के लीलाओं की अनुभूति में कभी हँसते तो कभी रोते थे । प्रह्लाद जैसी स्थिती हो गई थी–

क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्तशबलचेतनः ।
क्वचिद्धहसति ताच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ।।

गोपालजी की सेवा करते–करते ऐसी प्रेममयी बातें करते मानों साक्षात् उनसे बतरा रहे हो । इस प्रकार उनका अधिकांश समय भावावेश में ही व्यतीत होता । प्रिया–प्रीतम की नित्य नई–नई लीलाओं का अवलोकन करते हुए जीवन को आलोकित करते रहते थे । रसिक सन्तों की वाणियाँ उनको प्रायः कण्ठस्थ थी । सभी शास्त्रों का गहन चिन्तन उनके पास था । सभी प्रश्नों का समाधान बड़ी सरलता से कर देते थे । यमुनाजी में बड़ी निष्ठा थी "जय जमुना मैया" यह वाक्य प्रायः उनके मुख से उच्चारित होता ही रहता था । इसीलिए आप अन्तिम समय में श्रीधाम वृन्दावन आकर अपने ऐहिक जीवनलीला का विसर्जन कर प्रिया–प्रीतम की सेवा में सहचरी रूप से उपस्थित हुए । इससे बाह्य जागतिक दृष्टि से सामान्य जन को अवश्य ही खेद हो सकता है, परन्तु सन्तों का नित्य सहचरी परिकर में पहुँचकर प्रियाप्रीतम की नित्य परिचर्या प्राप्त करना इससे बढ़कर कौनसा अन्य प्रसन्नता का विषय हो सकता है ? अतः जो उनके प्रेमी–हितैषी–सत्संगी एवं सेवक–शिष्य परिकर है उन्हें भी उनकी प्रसन्नता में प्रसन्न होना चाहिए यद्यपि उनके अभाव में प्रेमी भक्तों को कष्ट होना तो स्वाभाविक है परन्तु उनके अनन्त सुख की प्राप्ति की प्रसन्नता से हमारी प्रसन्नता ही उनके सच्चे प्रेम की मंगलमय प्रतीक होगी ।

-रासेश्वरी दास (शास्त्री)
निकुञ्जवन, पानीघाट, वृन्दावन

पुरोवाक्

श्रीनिम्बार्क–सम्प्रदाय के मूल श्रीहंसभगवान् श्रीसनकादिक और देवर्षि नारद हैं । श्रीसनक अथवा निम्बार्क–सम्प्रदाय एक प्राचीन सत्सम्प्रदाय है । इसमें परम्परा से ही पूर्ण कैशोर्यमय श्रीश्यामा–श्याम युगलवर की उपासना माधुर्यभाव से की जाती है । श्रीसनकादिक देवर्षि नारद को श्रीराधा सहित श्रीकृष्ण की उपासना का उपदेश करते हुए कहते हैं–"**त्रिकाल पूजयेत्कृष्णं, राधया सहितं विभुम् ।**" (सनत्कुमारीय योगरहस्य ३/५) तथा "हे देवर्षि नारद ! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो श्रीराधामाधव गोविन्द प्रभु की शरण लो । यह हमने अपने गुरुदेव श्रीहंस भगवान् के मुखारविन्द से सुना है । वही बात हमने तुमसे कही–

"यथा हि हंसस्य मुखारविन्दाच्छ्रुतं मया तत्कथितं रहस्यम् ।
गोविन्दमाद्यं शरणं शरण्यं भजस्व भद्रं यदि चेच्छसि त्वम् ।।"

(सनत्कुमारीय यो० र० उप० २/११)

श्रीनारदजी के पूछने पर सनकादिक श्रीराधा का परिचय बताते हुए कहते हैं–

प्रेमभक्त्युपदेशाय राधाख्यो वै हरिः स्वयम् ।
वेदे निरूपितं तत्त्वं तत्सर्वं कथयामि ते ।।
उत्सर्जने तु रा शब्दो धारणे पोषणे च धा ।
विश्वोत्पत्तिस्थितिलयहेतु राधा प्रकीर्तिता ।।
वृषभं त्वादिपुरुषं सूयते या तु लीलया ।
वृषभानुसुता तेन नाम चक्रे श्रुतिः स्वयम् ।।
गोपनादुच्यते गोपी गौभूवेदेन्द्रियार्थके ।
तत्पालने तु या दक्षा तेन गोपी प्रकीर्तिता ।।
गोविन्दराधयोरेवं भेदो नार्थेन रूपतः ।
श्रीकृष्णो वै स्वयं राधा या राधा स जनार्दनः ।।

(सनत्कु० यो० र० उ० ७/४–८)

अपनी जीवनचर्या द्वारा आदर्श प्रेम तथा भक्ति का उपदेश देने के लिए श्यामसुन्दर श्रीहरि स्वयं ही 'राधा' नाम से प्रसिद्ध हुए । वेद में इनके तत्त्व का जिस प्रकार निरूपण हुआ है, वह सब मैं तुमसे कहता हूँ । 'रा' शब्द उत्सर्ग या त्याग के अर्थ में प्रयुक्त होता है और 'धा' शब्द धारण एवं पोषण के अर्थ में । इसके अनुसार श्रीराधा इस विश्व की उत्पत्ति, पालन तथा लय की कारणभूता कही गयीं हैं । आदि पुरुष ही वृषभ है, उसको निश्चय ही वे लीलापूर्वक उत्पन्न करती हैं, अतः स्वयं श्रुति ने उनका नाम "वृषभानुसुता" रख दिया है । वे सबका गोपन (रक्षण) करने से 'गोपी' कहलाती हैं । 'गो' शब्द गौ, भूमि,

वेद तथा इन्द्रियों के अर्थ में प्रसिद्ध है । राधा इन 'गो' शब्दवाच्य सभी पदार्थों का पालन करने में दक्ष हैं, इसलिए भी 'गोपी' कही गयी हैं । इस प्रकार 'गोविन्द' तथा श्रीराधा में केवल बाह्य रूप का अन्तर हैं, अर्थात् उनमें कोई भेद नहीं है । श्रीकृष्ण स्वयं राधा हैं और जो राधा हैं, वे साक्षात् श्रीकृष्ण हैं।'

इसी परम्परागत उपासना का अनुसरण करते हुए श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने "वेदान्त–कामधेनु" के चतुर्थ एवं पञ्चम श्लोक – **'स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोष"** तथा **"अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा"** में उपास्य स्वरूप का निरूपण किया है । पञ्चम श्लोक में **"सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा"** कहकर आपने 'सहचरी–भाव' की उपासना को पुष्ट किया है । नवम् श्लोक में **"भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा"** से परमप्रेमरूपा उत्तम पराभक्ति तथा दशम् श्लोक में **"भक्तिरस स्ततः परम्"** द्वारा अनन्य पराभक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है । श्रीनिम्बार्काचार्य कहते हैं–**"उपासनीयं नितरां जनैः सदा"** (वे० काम० ६) अर्थात् भगवज्जनों को हर स्थिती में निरन्तर श्रीराधासर्वेश्वर की उपासना करनी चाहिए । श्रीसनकादिकों ने तत्त्ववेत्ता श्रीनारदजी को यही उपदेश दिया था ।

चौदहवीं शती में श्रीश्रीभट्टदेवाचार्यजी ने युगल–रसोपासना को ब्रजभाषा काव्य "श्रीयुगलशत" में अभिव्यक्त किया – 'संतो ! सेव्य हमारे श्रीपिय प्यारे, वृंदा विपिन विलासी' (सि० सुख ५) इन्हीं के पट्टशिष्य रसिक राजराजेश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी ने "श्रीमहावाणी" के पञ्चसुखों में श्रीयुगल प्रेमरस का सिन्धु ही प्रकट कर दिया । वे सुरतसुख के मंगलाचरण श्लोक में उपास्य स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

राधाकृष्णावहं वन्दे रसरूपौ रसायनौ ।
वृन्दावन–निकुञ्जेषु नित्यलीला समाश्रितौ ।।
गौरश्यामौ महारम्यौ कोटि–कन्दर्प–मोहनौ ।
रङ्गदेवी–सेव्यमानौ पराभक्ति प्रदायिनौ ।।

उक्त उपासना का गान श्रीरूपरसिकदेवजी, श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्य, श्रीवृन्दावनदेवाचार्य, श्रीनागरीदास (श्रीसावन्तसिंहजी) ने भी अपने वाणी ग्रन्थों में किया है । इसी रस के रसिक श्रीगोपालदासजी महाराज भी थे, जो जीवन पर्यन्त सुरसिकों का संग प्राप्तकर श्रीमहावाणी के इस उपदेश –**"मन माधुर्य रस माहिं समोवे"** को हृदयंगम करते हुए अहर्निश श्रीलाड़िलीलाल को लाड़ लड़ाते रहे । श्रीयुगल प्रेमरस से पूरित आपके अन्तःकरण के अनेक भावोद्‌गार ही एक गीतिकाव्य के रूप में परिणत होकर आज हमारे समक्ष हैं, इनमें सर्वप्रथम आचार्य मंगल, गुरुपरम्परा, सिद्धान्त एवं मधुर दोहावली तथा आचार्यों की बधाई का गान हुआ है। इसके बाद आपने सिद्धान्त, उत्सव, मधुर तथा सहज के पदों का गान किया है।

आपकी आचार्यनिष्ठा का परिचय ग्रन्थ में यत्र–तत्र प्राप्त होता है – "जिस प्रकार सूर्य से कमल विकसित होता है उसी प्रकार मेरा हृदयकमल भी निम्बभानु की कृपाकिरण से प्रफुल्लित हो गया । यथा–"**खिल्यो ह्रदयाम्बुज लखि निंबभानु**" (पद–१२) आपने गुरुकृपा को जगह–जगह प्रकाशित किया है–"**श्रीगुरुदेव कृपा करि दीनो, जुगल खजानो बताय**" (१०५) धाम की महिमा को व्यक्त करते हुए आप कहते है – "**तीरथ में काहे फिरे, बसि वृंदावन माहिं । गौर स्याम अनुराग सम, तीरथ राजा नाहिं ।।**" श्रीवृन्दावन की जिस जीव पर कृपा हो वही इसे प्राप्त कर सकता है–"**धनि श्रीवृंदावन की धरनी । जापै कृपा करे सो पावै, लगे न अपनी करनी ।।**" (८७) श्रीवनराज के सभी सन्तों की वंदना एवं उनकी महिमा का गान करते हुए आप कहते हैं–"**वंदौ सकल बन के संत । जिनकी महिमा वेद वखानत, पायो न अंत ।।**" (४२) एकनिष्ठ होते हुए भी सभी का समादर करना यह महापुरुषों का उत्तम लक्षण है । जिसकी वेद, देव, ब्राह्मण, साधु व धर्म में निष्ठा है, श्रीहरि उसी के साथ है । इनका जो अनादर करता है, उसका शीघ्रातिशीघ्र पतन हो जाता है–"**देव, वेद, गउ, ब्राह्मण, साधु, धर्म हरि साथ । द्वेस करेते जानिये, सीघ्र होय परपात ।।**" (सि० दोहा ४) नश्वर देह में आसक्त जीव की दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं–"**सब जग खाल विलास में, तामें रहे समाय । जहाँ दोऊ ससि अमृत बरसे, ते तहँ किहिं विधि जाय ।**" (सि० दोहा २२) तथा –"**देखो भैया यह कैसो तमासा । कोटि उपाय करत असत को, सत को सहज प्रकासा ।।**" (१००) जहाँ सत्य नित्य वस्तु का सहज ही प्रकाश है, उसे त्यागकर जीव असार वस्तु के लिए अनेकों उपाय में लगा हुआ है । ऐश्वर्य के मद में मत्त नर–नारी अपने सिवा अन्य किसी का कुछ भी महत्त्व नहीं समझते, यहाँ तक की श्रीहरि–गुरु व साधु का भी परित्याग कर देते हैं–"**दिन द्वै प्रभुता पाय नर–नारी । गिनत न काहु त्यागे हरिगुरु, कीनी अपनी ख्यारी ।।**" (४४) करुणानिधि श्रीहरि की भक्तवत्सलता को व्यक्त करते हुए आप कहते हैं–"**प्रभु तुम बिन स्वारथ उपकारी । ऐसो को त्रिभुवन में तो सम, सरनागत भयहारी ।।**" (४६)

पति के बिना वनिता का सोलह श्रृंगार व्यर्थ है उसी प्रकार श्रीयुगल के भजन बिना सकल कर्म धर्म केवल प्रपंचमात्र ही हैं– "**सबते हरि भजन है सार । और करम धरम बहु वरने, हमें लगे जंजार ।।**" (५०) श्रीप्रियाजू से आप अपनी अभिलाषा को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं–"**लड़ैतीजू कब उर रस सरसावोगी । गद–गद स्वर विपुल पुलकावलि, रोमरोम प्रगटावोगी ।।**" (१०४) मधुररस पदावली में आपने श्रीश्यामाजू की कितनी अनुपम छवि का आस्वादन कराया है–"**लड़ैतीजू के सोभित पीक कपोल । रदन छदन मनु मदन जगाये, बोलि लियो मृदु बोल ।।**" (५४) श्रीयुगलवर के पदपंकजों की

पटतर देते हुए आप उनकी शोभा पर न्यौछावर हो जाते हैं–"**बलि–बलि जाऊँ जुगल चरन की । प्यारी दामिनी सी दुति सोंहे, प्यारो मेघ सम वरन की ।।**" (५३) सुन्दर वरजोरी के सौन्दर्य पर सुन्दरता भी चकित होकर मुख से कुछ कह न सकी–"**कौन विधि ने सुघर या जोरी बनाई । सुघर सुघरई देखि चकित भई, मुख कछु कहत न पाई ।।**" (६६) आपने कमल कुसुम अनुरागी श्रीलालजी की अनुरागता को नेह–रजनी के सम्पुट में कितनी चतुरता से प्रकट किया है–"**साँवरो कमल कुसुम अनुरागी । मूँदी जात जब नेह–रजनी में, मानत हों बड़भागी ।**" (८८)

इसी प्रकार आपने उत्सवों में बसन्त, होरी, हिंडोरा, रास व व्याह के पदों का भी बड़ा ही मार्मिक गान किया है । 'सुरत हिंडोरा' की अद्‌भुत झाँकी प्रस्तुत करते हुए कहते हैं–"**लटकति चली रमकी झमकी । नीरद से नागर पर प्यारी, दामिनी सी दमकी ।।**" (६५) वाणी ग्रन्थ के अन्तिम पदों में आप कहते हैं कि श्रीयुगल कृपा से मेरे मन की सब चिन्ता दूर हो गई । सहज ही सखियों का संग प्राप्त हुआ–"**अब सब चिंता गई मन की**" (१०२) जिनके दर्शन के लिए मैं तरसता था वह श्रीयुगलवर मेरे सन्मुख साक्षात सुशोभित हो रहे हैं–"**जाको तरषि–तरषि दिन बीते, सो अब प्रगट खरे ।**" (११७)

प्रस्तुत ग्रन्थ में वाणीकार ने पदों के अंत में अपने नाम का उल्लेख किया है परन्तु मधुर, सहज व कुछ अन्य पदों में अपना सखी नाम "रतनकला" का प्रयोग किया है । कहीं रतन के साथ नागर, प्रभा, ज्योति आदि भी दिया है जो उसी नाम के पर्याय है, अस्तु । इस वाणी ग्रन्थ को नवीन नाम, पद क्रमांक, उत्सव, मधुर तथा सहज के पदों में विभाजन एवं छन्दोबद्ध आदि से सुसज्जित करने का प्रयास किया है । संशोधित यह प्रथम संस्करण "श्रीयुगल कृपा निधि" समस्त रसिक प्रेमी भक्तों के कर–कमलों में सादर समर्पित है । ग्रन्थ सम्पादन सेवा में भूल होना स्वाभाविक ही है । आपका अपना जानकर कृपया क्षमा करें ।

यह **'श्रीयुगल कृपा निधि'** ग्रन्थ म० श्रीरूपकिशोरदासजी (मुखिया) की सत्प्रेरणा एवं म० श्रीराधेश्यामदासजी महाराज के उत्साह एवं सहयोग से पूर्ण हुआ । इस मंगलमयी सेवा में हाथ बटाने वाले सभी के लिए शुभ–कामना है कि श्रीराधासर्वेश्वर में उनकी प्रगाढ़ प्रीति हो ।

जयजय श्रीराधे

रसिकचरणरजाकांक्षी–

जयकिशोरशरण

सन्त–कालोनी, श्रीवृन्दावन

राधाकृष्णावहं वन्दे रसरूपौ रसायनौ ।
वृन्दावननिकुञ्जेषु नित्यलीलासमाश्रितौ ।।
गौरश्यामौ महारम्यौ कोटिकन्दर्पमोहनौ ।
रङ्गदेवी–सेव्यमानौ पराभक्ति प्रदायिनौ ।।



रसिक सर्वश श्रीयुगलकिशोर

श्रीराधासर्वेश्वरो जयति

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः

श्रीगोपालदासजी महाराज की वाणी "श्रीयुगल कृपा निधि"—

❊ मंगल ❊

श्रीहंस सनकादिक नारद आरज ।
जुगल–प्रेम–माधुरी उपदेस्यो, श्रीनिम्बार्क द्वादशाचारज ।।
अष्टादस श्रीभट्ट प्रगटे हरिव्यास चतुर ब्रज वन सरवारज ।
सबनि प्रनऊँ (श्री) किशोरीदास पद दास गोपाल सुधारे कारज।।१।।

श्रीगुरुपरम्परा

❊ दोहा ❊

प्रथम छहों एश्वर्य युत, प्रगट भये कृत कृत्य ।
दूजे करिके आचरन, कहलाये हरि भृत्य ।।१।।
तीजे महा पराक्रमी, जगत प्रसूति जीति ।
तजिके जग व्योहार सब, देखे मोहन मीत ।।२।।
चौथे पूज्य कहाइके, हरि पद कीने प्रीति ।
श्रीवनराय निकुंज में, अपनाये रस रीति ।।३।।
पाँचे आये सरन जे, प्रभु लीने अपनाय ।
छटे दास गोपाल की, परे आस लगाय।।४।।
वंदहु हंस सनकादिक, मुनि नारद निम्बार्क ।
आचारज श्रीनिवास पद, सेऊँ तन मन वाक।।५।।
विश्वाचारज पद–कमल, पुनि पुरुषोत्तम ध्याय ।
मो उर विलास वसो श्री, स्वरूप वलि जाय।।६।।

माधव अरु वलभद्र जु, पद्मा स्याम गोपाल ।
कृपाचारज देव हिये, लसत रहो सब काल ।।७।।
सुंदर भट्ट प्रनऊँ सदा, पद्म नाम उपेन्द्र ।
रामचन्द्र पद नाऊं सिर, मिटे जगत के द्वन्द ।।८।।
वामन कृष्ण पदमाकर, श्रवन भूरि आचार्य ।
माधव स्याम गोपाल भजि, वन्यो सहज सब कार्य।।६।।
भट्टश्री वलभद्रजू, गोपीनाथ उरधार ।
केशव गांगल केशव, काश्मीर पदचारु ।।१०।।
श्रीभट्ट श्रीहरिव्यास अरु, स्वभूदेव पद सेवि ।
कर्णहर परमानंद चतुर, चिंतामनी भरि भेवि ।।११।।
मोहन द्वारिकादेव जू, गिरिधारि राम हरिदास ।
अमरदास यमुनासरन, गोविंददास पद आस ।।१२।।
घनस्याम रणछोड़ जू, (जयश्री) किशोरीदास पद ध्याय।
भाग सराहत पुनहि पुन, 'गोपाल दास' सचुपाय ।।१३।२।।

※ रसमय दोहावली ※

रंग रँगीली लाडिली, रंग रँगीलो लाल ।
रंग रँगीली सहचरी, रंग रँगीले ख्याल ।।१।।
ये बाला हाला मनो, रुप-सरोवर माँझ।
निकसी है कुमुदिनि कली, विकसीवे लगि साँझ।।२।।
प्यारी रुप-सरोवर पिय, मन नित अवगाहि।
कमलन लखि अलि चंचल, केहि विधि पावे थाह।।३।।
चढ़िके उरज वुरज पर, कूदि पर्‌यो सरमाहि।
लै डुबकी थाह न लग्यो, उछल्यो थाह न पाय।।४।।
पहिले तो आहा करि, दूजे रही सिहाय।
तीजो समय जानिके, रहि गइ चुप्प लगाय।।५।।

तोसी गति बनि तोहिपै, हों बलि जाऊँ बाल।
बैनन सों नहि जात कही, हृदय कमल प्रतिपाल।।६।।
तोसी संपत्ति पाइके, उर में भई हुलास।
ताको समता दैनको, ना कछु मेरे पास।।७।।
चंद्र मिटे दिनकर मिटे, मिटे त्रिगुन के ठाट।
पिय थाह न लगे रुप तिय अवहु लगे न वाट।।८।।
अधर सुधा–रस पीवहीं, जीवहिं रूप निहार।
आदि न अंत निकुंज में, बिहरे जुगल बिहार।।९।।
सुख की अवधि आस करि, बास बसे बन ऐन।
नागर नागरी के वस, नागरी नागर चैन।।१०।।
प्यारीजु गहे गैल जब, प्यारो परे वे पाँय।
हा हा खावे देखिके लई उर माहिं लगाय।।११।।
वन में कौतुक एक सखी, देखत प्यारीलाल।
सों कौतुक सखियाँ लखि, हिय हुलसावति ख्याल।।१२।।
मन–भोरी गोरी–तन, छवि चंचल गहराय।
लालन मन दुविधा भये, निरखि रहूँ उरलाय।।१३।।
रूप अनूप निहारिके, रूप बनायो रूप।
अंग–अंग सौरभ लिये, भये विभोर अनूप।।१४।।
घन दामिनी में लीन पुनि, दामिनी घन में समाय।
दोऊ मिलि ऐसे मगन, रहे बन माहिं सुहाय।।१५।।
खग मृग द्रुम वेली फल, पूहुप पत्र प्रतिडार।
श्रीजमुना जल थल विकसे, जोरी जू सों प्यार।।१६।।३।।

※ सिद्धान्तमय दोहावली ※

(श्री) निम्बार्क गुरुदेव के, पग वन्दों कर जोर।
इन चरणों के सरन विनु, या अपर नहिं ठोर।।१।।

नियमानँद आकास में, ससि सूरज उडु साथ।
तिहुँ काल अबहु कहे हरि, हरि भक्तन गाथ।।२।।
दो पहर के ओस ते प्यास न मिटनो यार।
याते सोच विचारि के, करि प्रीतम सों प्यार।।३।।
देव वेद गऊ ब्राह्मन साधु धर्म हरिसाथ।
द्वेस करेते जानिये, सीघ्र होय परपात।।४।।
होयेंगे जो हो गये, जग जितने हरिदास।
तिन सवन की चरन रज, करो मो सिर पे वास।।५।।
सिंधु–सुता मन में रुचे, साँचों है कलिकाल।
ताके पति में रुचि नहीं, कहा बूढ़ो का बाल।।६।।
जब लगि मन इनमें रह्यो, तब लगि दीन मलीन।
सुख सागर लहरें उठी, श्रीगुरु पद लवलीन।।७।।
बीज दोऊ भान्ति के, लेवो समझि सुजान।
विष के बीज जगत सुख, अमृत राधा नाम।।८।।
रसिक संत अवलौं भये, गाये जुगल बिहार।
श्रीनिम्बार्क सम न मन, मोद बढ़ावन हार।।९।।
इष्ट मित्र धन धाम ये, जोरी गोरी स्याम।
'गोपालदास' उर में रहो, आदि मध्य अवसान।।१०।।
माया दुस्तर सिंधु सम, उलँघि पार सो जाय।
कौवा कुत्ता खोजत न, निर्मम हरि–गुन गाय।।११।।
तीरथ में काहे फिरे, वसि वृन्दावन माहिं।
गौर स्याम अनुराग सम, तीरथ राजा नाहिं।।१२।।
कटुक वचन सुनि सठन के, धीर न होय मलान।
चारि दिना को मद छयो, तू क्यों करे गलान।।१३।।
तोता पढ़ायेते पढ़े, वगुला पै नहिं होय।

सब समान होये नहीं, कहे चतुर जो लोय।।१४।।
जिसने बनाया जिन्दगी, सो मेरे सिरमौर।
आगा पिछा ना लखा, ताको कहूँ न ठौर।।१५।।
ये माया सम पाथरा, ता तर तेरे हाथ।
काढ़ि लेऊ लुड़काइके, हरि हरिव्यासी साथ।।१६।।
हमने भी वरवादी में, बिता दिया दिन रैन।
श्रीहरिव्यास कृपा किये, तब पावन लगे चैन।।१७।।
चोर चोरी करन को, दाव लहे दिन--रात।
श्रीहरिव्यास कृपावल, दे चल सिर पै लात।।१८।।
साईं के प्रकास यह, जब चाहे तब लेत।
इत उत को भटकत फिरे, मन तेरो का हेत।।१६।।
ज्यों चंदा के संग चाँदनी, रवी के संग तेज।
त्यों तिय पिय के संग में, रहति सखी धरि हेज।।२०।।
हरि सुमिरि अघ नासिये, भावते या दुर्भाव।
ज्यों रुचि अनुरुचि छीगये, फूँकि देत तन दाव।।२१।।
सब जग खाल विलास के, तामे रहे समाय।
जहाँ दोऊ ससि अमृत बरसे, ते तहँ किहिं विधि जाय।।२२।।
रह्यो विषै के फेर में, कियो न कबहु सम्हार।
ताको क्यों अपनायगें,सब सुख रतनागार।।२३।।
प्रभु समर्थ छिन ऐक में, दूरि करे जंजाल।
तू निज मन बच काय ते, सेवत नित जुग लाल।।२४।।
मुख्य धर्म पूछन लगे, गांगेय सो कौन्तेय।
कहन लगे हरि भजन है, सब धरम पर एह।।२५।।
होंबलि जाऊँ दयानिधे, छुड़ा दियो जग पंक।
तृष्णा न मिटती कबहू न होते कभी निसंक।।२६।।

एक भरोसो रावरे, नहीं दूसरी आस।
चरन कमल मकरन्द में, मन–मधुप रहत प्यास।।२७।।
गुरु मुख गुपत बात सुनि, चतुराई को छोंड़।
चतुराई ते जड़ भये, जड़ चतुरन के ओंड़।।२८।।
जो चाहे सुख सरबदा, सेउ जुगल अभिराम।
गोपालदास इन चरन, बिन कौन लह्यो विश्राम।।२६।।
विष अमृत करि मानहीं, देखो इनकी भूल।
जो याके हित की कहे, तिनही ते प्रतिकूल।।३०।।
दुख काहू को ना हरे, ना काहू को देत।
करता के कीने सबहीं, तू क्यों डोले सेंत।।३१।।
हित चाहें मो स्वामिनी, पकरी राखी वाँह।
गिरवो चाहें कूप में, गिरने देती नाँह।।३२।।
अतिहि कूरुप क्यों न हो, तिन बिन जान न आन।
ते या जग में जानिये, सब सिरमौर निदान।।३३।।
मारग तो बह जानिये, श्रीगुरु दियो बताय।
ता बिधि सों नित चालिये, सहज जुगल मिलि जाय।।३४।।४।।

श्रीकिशोरीदासजी महाराज की मंगल बधाई

※ मंगल ※

जै–जै श्रीगुरुदेव किसोरी सहचरी।
निज परिकर सुख देन, अवनी पर अवतरी।।
प्रेम–भक्ति को दान, सवन ही को दई।
जुगल–किसोरहि जस, जग में लई।।
लई जस जग में प्रचुर पुनि, हरि भक्त की सेवा किये।
भानु–नगर निवास निसदिन, अमित सुख सों भरे हिये।।

रीति हंस वंश संतन, ताहि विधि सों अनुसरी।
जै जै श्रीगुरुदेव, किसोरी सहचरी।।१।।
जै–जै श्रीगुरुदेव, नित हरिप्रिया भजी।
तृन सम जानि संसार, मोह सबते तजी।।
तत्व समझि जिमि हंस, नीर पय पृथक किये।
सरनागत समुझाय, अभै पद को दिये।।
दिये पद करि अभै जैसी, स्वामी निंबारक कहीं।
ताहि विधि सों आचरी तब, तिनहि के सदृश भई।।
नव निकुंज वर–लाडिली–पिय, निकट रहे सेवा सजी।
जै–जै–श्रीगुरुदेव, नित हरिप्रिया भजी।।२।।
जै–जै श्रीगुरुदेव, सेवे निसिभोर हीं।
मन में लिय अनुकूल, जुग वर किसोर हीं।।
यूथेश्वरी रंगदेवी, आज्ञा सिर धारिके।
समै समै रुचि जानि, लेत सम्हारिके।।
रुचि जानि लेत सँभारि जैसी, अतरदान कर सों गहीं।
वस्त्र भूषन अंग–अंगनि, छिरकि मोद बहु उपजही।।
भई प्रसन्न सुकुमारि प्यारी, निरखि नैंननि को रही।
जै–जै श्रीगुरुदेव, सेवे निसिभोर हीं।।३।।
जै–जै श्रीगुरुदेव, कृपा मो पर करो।
लिये सकल समाज, मो उर में ढरो।।
मन भयो विषै को दास, रहे तासों रंगे।
छिन–छिन बड़त लालस, विषयन के संगे।।
रहे संग आसक्त निसदिन, अहंता छाँड़े नहीं।
बुद्धि अरु विवेक विसरी, मूढ़ता हरषे गही।।
अधम 'दास गोपाल' जिय में, जानि मोहिं न परिहरो।
जै जै श्रीगुरुदेव, कृपा मो पर करो।।४।।५।।

❋ मंगल ❋

मंगल मूरती श्रीगुरुदेव।
मंगल श्रीवृन्दावन बिहरे, जुगल किसोर के जानत भेव।।
मंगल पद सरोज ध्यावत ही, हीय में सहज सफूरत सेव।
मंगल श्रीहरि भव पार करै, हरै 'गोपाल' मन की कुटेव।।६।।

❋ पद ❋

भागन ते श्रीगुरु पंचमी आई ।
उतरत चैत पाँचे सुभ दिन, बुद्धवार सुखदाई ।।
आवो संतो मिल मंगल गावो, सुखसागर सरसाई ।
'गोपालदास' मस्तक पर कर धरि, अपने निकट बसाई ।।७।।

श्रीनिम्बार्क भगवान् की मंगल बधाई–(पद–तिताल)

मंगल निंब–दिवाकर बंदे।
सत चित आनंद के दाता, मुकट रसिकन वृंदे।।
पावन परम चरन सरसीरुह, नख मनी निंदित इंदें ।
तिन पर वलि–वलि 'रतनकला' अलि, पान करत मकरंदे।।८।।

❋ पद (राग–भैरव) ❋

अज्ञान तिमिर छाये, भानिवे निंबभानु आये,
सुमत थापि द्वैताद्वैत संप्रदा चलाई।
हंस सो सनकादि सुनि, श्रीनारद प्रति ताहि भनी,
श्रीनारदमुनी प्रीति सहित इनको समुझाई।।१।।
आचारज रूप धारि, जग के कल्यानकारि,
प्रेम–भक्ति को स्वरूप जाऊं मैं बलिहारि।
श्रीवृंदावन नव–निकुंज, कुसुमित अलि करत गुंज,
सखिन सहित स्यामल पिय राजति सुकुमारि।।२।।

परम मधुर–रसहि गाय, नववासादि को दिखाय,
आज्ञा दइ ह्रदै राखि संपत्ति दुराये।
गोपनीय रस को सार, आरज किये हैं निरधार,
पात्र बिन देखे न कहुँ दे ढुराये।।३।।
परंपरा यह वस्तु आय, श्रीगुरुदेव दइ जताय,
मन संदेह गइ नसाय जगत सों उद्धारि।
तिनके पद–कमल पास, रे मन नित करहु वास,
भूलि न सकूँ गुन गोपाल दास वलिहार।।४।।
स्याम सुभग स्वरुप धारि, रसिकन मन मोद कारि,
अमंगलहारि विश्वस कल अविद्या नसाये।
नियमानंदादेस साथ, चलत ते सब भये सनाथ,
मायावाथ निकसि सुख के राज्य में बसाये।।५।।
राधा–सर्वेश्वर कहि, जुगल चरन उर में लहि,
स्वामी निंबारक गहि संतन लसाये।
उपकारि सम पायो न कोउ, ढूँडत फिर्यो अवनि तउ,
'गोपालदास' राखि लेउ चरन सरन।।६।६।।

✲ प्रभाति–पद ✲

श्रीनिंबारक श्रीनिंबारक कहो रे मन।
श्रीनिंबार्क चरन सरन गहिके सुख लहों रे मन।।
जन मन के काम दहित कल्पतरु जानो।
भागन सों पायो रे मन आन जिन न आनो।।
ये ही मेरे इष्ट गुरु सकल ह्रदै आसा।
और नहीं जानत इन बिन 'गोपालदासा'।।१०।।

※ पद ※

श्रीनिंबारक स्वामी मेरे श्रीनिंबारक स्वामी।
मोसे पतित सरन रखि लीने, लखि न कुटिल खल कामी ।।
अति उदार कविन कुल हारे, जिनको जस वरनत अभिरामी।
'गोपालदास' जन–पालक जै,जै तन मन बच परनामी।।११।।

※ पद (राग–केदार) ※

खिल्यो हृदयाम्बुज लखि निंबभानु।
काम क्रोध मद मोह जरावनो, मानहु प्रगट कृशानु ।।
नाम लेत अतुलित सुख उपजे, कहि गये संत प्रमानु।
'गोपालदास' गोप्य रससागर, नागरी–नागर सानु।।१२।।

※ पद ※

कृपा सक्ति समूह अवतरे।
जन जीवन संताप नसाये, सीतल अंग करे।।
बिन स्वारथ निश्रेयस दाता, ऐसो को जगमाहिं धरे।
'गोपालदास' जै–जै जयंती नंदन हे प्रवरे।।१३।।

※ स्तुति–पद ※

जै–जै श्रीनिंबारक स्वामी।
जन के कारन श्रीकरुनाकर, रूप धरे अभिरामी।।
धरि नरसिंह रूप हिरनाकुस–हति प्रहलाद उवारे।
पुनि वामन को रूप धारिके, सुरपति संकट टारे।।
धरि धनवंतरि रूप स्वजन के, नासे सकल कलेसु।
तन–मन के आमय नसि जावे, नाम लेत मुख लेसु।।
बहुरि रूप धारे रघुनंदन, जगवंदन जन त्राता।
धनुषवान कर गही विनासे, दस–आनन सह भ्राता।।
और अनेक रूप जल–थल में, जन के कारन लीने।
'गोपालदास' पर करुना कर, (श्री) किसोरीदास प्रवीने।।१४।।

※ दण्डक ※

श्रीहंसकुल कमल दिवाकर, प्रगटे श्रीनिंबारक स्वामी।
निर्तत गाय–गाय सुर ललना, देव विमान छये नभगामी।।
संत–समाज हरष हिय वाढ्यो, परम पुनित भये सब देस।
बिनहिं प्रयास धर्मरत नारी, नरन सुसिक्षा देत नरेस।।
आये संभू चतुरानन नारद, श्रीसनकादिक परम उदार।
अत्री वशिष्ठ कपिल पुनि गौतम, गरग किये मिलि मंगलचार।
स्वस्ती–बाचन वेद पढ़त भये, पंचामृत अभिषेक किये।
चिरजियो जयंतिके नंदन, मुनि जन हरषि असीस दिये।।
सौरभ नीर नहवायो जबहिं, अंग अनंग प्रभा करे मात।
अति कोमल सरस रूचिर पट, अंग अंगोछत निजकर तात।।
पीत वसन पहिरायो जबही, घन समान तन तड़ित लसे।
प्रमुद प्रनत–मन लखि मयूर सम, सुखद सबन के सुवपु असे।।

※ उत्कर्ष ※

ब्रजवासी टेर श्रीनिंबारक प्रभु, आज हरिव्यासिन के घर आये हैं।
और हरिव्यासिन के हरष बढाये, जैसे रंक महानिधि पाये हैं।।
भक्ति ज्ञान तिनके उर दीने, अबतो आवागमन नसाये हैं।
'गोपालदास' कहे कर जोरे, जुग जीयो जयंती जाये है।।१५।।

श्रीनिम्बार्क भगवान् से प्रार्थना

※ पद ※

(श्री) निंबारक स्वामी मेरे घर, कब तुम फिरसे आवेगो।
श्रीनिवास और औदुंबर, गौरमुख संग लावेगो।।
मेरे घर आवोगे जबही, आतम–ज्ञान करावेगो।
जुगल–किसोर अलिगन संग में, प्रेम–भक्ति सरसावेगो।।

माया त्रिगुन पिसाची सों कब, हमें छुटकार दिलावेगो।
'गोपालदास' विनै कर जोर, सुभ अवसर कब पावेगो।।
श्रीनिंबारक स्वामी तो बिन, खेल बिगर सब जावेगो।
मलेच्छन के हाथ में परिकै, मलेछहि नाम कहावेगो।।
सुखको लेस न दुख को सागर, गोता खात विहावेगो।।
और कोउ दीखैना भू पर, संकट सहज नसावेगो।।
आस तिहारी भरोसा भारी, बनि आये बनि आवेगो।
'गोपालदास' या विपदा से, तो बिन कौन छुड़ावेगो।।१६।।

श्रीनिवासाचार्यजू की बधाई–

⁂ पद "राग–वसन्त" ⁂

बाजत आज बधाई बिपिन में, बाजत आज बधाई।
नव निकुंज रितुराज राजत, दियो सबनि दरसाई।।
नाम (श्री) निवास हंसकुल भूषन, जस–सौरभ छिति छाई।
'दासगोपाल' चरन–सरन है, अभै निसान बजाई।।१७।।

श्रीकेशवकाश्मीरी भट्टाचार्यजू की बधाई–

⁂ पद "राग–सारंग" ⁂

अनुराग प्रगटे आज मूरती धारे।
हंसकुल आभूषित कीने, संतन के रखवारे।।
आप श्रीमुख अर्जुन सों भाख्यो, समरथ क्यों प्रन टारे।
प्रतिकूलनि अनुकूल किये, अभिमान अविद्या जारे।।
दंपति रति रहसि उपदेस्यो, जे प्रभु सरन सिधारे।
सत चित प्रेम सेवक तन धरि, स्वामी चरन पखारे।।
प्रभुता वरनी सकै को वपुरा, सेस सरस्वती हारे।
श्रीकेसवकास्मीर दिग्विजई, प्रताप सबनि निहारे।।

संवत् तेरह सौ दिवस पक्ष, जेठ सुदी दिना चारे।
तैलंग मध्य कुंकुमा सखी, सुभ नक्षत्र अवतारे।।
वार भूमि सुत सुभ लक्षन जुत, विप्रन बहुत प्रकारे।
मंगलचार करत विविध विधि, बाजे बजत अपारे।।
द्वारे कलस कदली अति सोभित, तोरन वंदनवारे।
नर नारी मिलि करत बधाई, देत लेत अपारे।।
पिता मनोहर सोभा अति मैया, भई प्रसन्न लखि वारे।
विप्रन दान देत यथोचित्, सूत वंदीजन न्यारे।।
सब दिस सुभ लक्षन सब देसन, सब धर्म प्रतिपारे।
कोयल कुहुकत सिखीकुल निर्तत, सुक चातक करत कुरारे।।
'रतनाकर' तट परम मनोहर, वृक्षन पंकति न्यारे।
सब सुख पूरि रह्यो मुँगीपुर, संत मुनीन के प्यारे।।१८।।

⁂ चाँचरी ⁂

तहाँ द्वै ढांडी ढांडिनी आये। सजि धजि गावत अतिही सुहाये।।
गान सबन के मन भाया। मुख भनक रंग बरसाया।।
ढाँडिनि की कटि अति छीनी। लचिली नाचत मन हरि लीनी।।
लहँगा पर फरिया धारी। कुच कंचुकी कसी सु न्यारी।।
ताकि सुघर नितंवनि जोटी। तापर वेनी फौंदी लोटी।।
बोलन कोयल ज्यों बोले। ढाँड़ि बिकोजात बिन मोले।।
ढाँड़ि है सुंदर भेटा। माथे पै रेसम फेटा।।
ता उपर कलंगी सोहें। छिन–छिन ढाँडिनि को मन मोहें।।
कटि काछि पीतांबर धोती। जामा पहिरे माला मोती।।
द्वै पाँवन में घुँघरु बाँधे। स्वर पंचम मध्यम साधे।।
निर्तत वंसावलि गाये। तिन्हे रीझि दिये मन भाये।।
'दासगोपाल' सुजस बखाना। अनूप रूप लखा मन माना।।१६।।

श्रीश्रीभट्टदेवाचार्य जू की बधाई

⁂ दोहा ⁂

जुगल प्रेम रस–माधुरी, श्रीभट्ट प्रगटे आज।
सुख सागर लहरें उठे, गावत सकल समाज।।

⁂ सोहिलरा ⁂

आज दिन भलोरी हेली, सुखहि बढ़ावनो।
निरखें चलोरी हेली, नैंन जरावनो।।१।।
भाग सराऊँरी हेली, कौन सुकृतिसों।
या रूप भराऊँरी हेली, उर में प्रीति सों।।२।।
उर में प्रीति सुघर रीति, गीत गावो आज हे।
बीति जावे रैन–वासर, चीति साज समाज हे।।३।।
केते दिन अभिलास तेते, मीत सों मिलनो भयो।
जीति अब परतीत मोको, श्रीगुरु सरने गयो।।४।।
वंसीवट निकट री हेली, श्रीयमुना के तट।
नभ पुंज विकट री हेली, बिटप बेली जट।।५।।
प्रस्फुट कुसुम री हेली, मधु गट पद खट।
सखी थट सुषम री हेली, बिलसत जुग भट।।६।।
जुगल भट संग्राम जीते, छूटि पट लट राजहीं।
टूटि उर हारावली निकट, हितू सखी साजहीं।।७।।
साजि सहचरी बाज बहु विधि, मधुर सुर सों गावहीं।
प्रेम–सागर लहरे मानों, उमंग उरमें लावहीं।।८।।
प्यारी मन आयो री हेली, हितू सजनी लखी।
कहा आज भायो री हेली, पूछति हितू सखी।।९।।
कहत न वन्यो री हेली, समुझी बात को।
हौं उनमान्यो री हेली, धरूँ बह गात को।।१०।।

गात अति कमनीय जै श्रीभट्ट, देवजू को अहा।
काम रति कहा समता करि सके, प्रेम रसागर महा।।११।।
रूप अनूपम निरखि नैना विसरि, गति गयो आपनो।
निखिल सोभा ह्वै इकत्रित पदाश्रय कियो थापनो।।१२।।
दोज सुदि क्वार री हेली, प्रगटे भू पर ।
भीर भई द्वार री हेली, मात पितू घर।।१३।।
मधुपुरी माहिं री हेली, बजत बधाइयाँ।
हरषि सब आइ री हेली, मंगल गाइयाँ।।१४।।
मंगल गावे विप्र सब मिलि, नाम धर्‌यो श्रीलालको।
रसिकजन मन मोदकारी, ह्वदै सरसिज पाल को।।१५।।
धन्य–धन्य बह सुभ तिथी घरि, धन्य कुल उत्पन भये।
'गोपालदास'के मन मनोरथ, पूरये सरन जे गये।।१६।।२०।।

✻ पद 'दादरा' ✻

श्रीकेसव–कास्मीर प्रति प्रीति, उमड़्यो प्रगटे श्रीहितु रूप।
दरसन करि उर हरष न समायो, छाँड़ि चले विषै–जल–कूप।।
वंसीवट तट वास करत सँग, राजत श्रीवृंदावन भूप।
'गोपालदास' गुरु चरन सरन, सुख पायो दिन अमित अनूप।।२१।।

✻ मंगल ✻

नमो नमो जै श्रीभट आचारज।
जन के हेत अवनि पर प्रगटे, सहजहि बनि आयो सुभ कारज।।
जुगल–चरनरति वितरन कीनो, दीनो रज वाँछित हारे अज।
'रतन कला' बलि जाय चरन पर, परम मनोहर मंगल पंकज।।२२।।

✻ पद ✻

सहज सरद–रितु सुखद सुहाये।
विमल कुमुद कुल निरखन के हित, इंदु अवनी पर आये।।

सुधा–सदन सींच्यो अति सीतल, तनके तपन बुझाये।
'गोपालदास' छवि पर वारों, अगनित चंद सुहाये।।२३।।

श्रीहरिव्यास देवाचार्यजू की बधाई

⁂ मंगल पद (तिताल) ⁂

मंगल श्रीहरिव्यास उदार।
मंगल कनक वरन तन सोहें, लखि ससि लज्जित मार।।
मंगल चरन सरन मुख उचरत, भाजत विविध विकार।
मंगल 'रतनकला' सखियन संग, अवलोकत सुख सार।।२४।।

⁂ पद ⁂

सुभग सदन में सुखद बाजे बधाई।
हरि–प्रिया दोउ मिलि प्रगट भये, भाग सों रसिकन राई।।
करि सिंगार चलीं घर घर ते, द्विज नारि की छवि छाई।
नाम धर्‌यौं हरिव्यास विप्र मिलि, 'गोपालदास' बलि जाई।।२५।।

⁂ पद ⁂

मन मेरे श्रीहरिव्यास क्यों न कहे।
वृंदावन रस–सागर माहीं, निसदिन क्यों न रहे।।
यह सौभाग्य फेर नहीं पावे, कितनोउ जतन गहे।
'गोपालदास' कृपा बल तिनके, जै जै फेर कहे।।२६।।

⁂ रेखता ⁂

भया है मस्त अलवेला। स्वामी श्रीभट का चेला।।
रसिक उर कमल प्रतिपाला। भानु ज्यों नसे तिमिर जाला।।
सरन जे आये ततकाला। रीझि देत प्यारी लाला।।
न्यौछावर दास गोपाला। तन मन धन करि डाला।।२७।।

❊ छप्पय ❊

श्रीहरिव्यास रस–प्रेम की मूरति प्रगटे तासुरे।
नव–निकुंज–वर केलि माधुरी विस्तर्‌यो।
गावत सुनत सिरात जगत ते निस्तर्‌यो।।
आसय अति गंभीर कृपा ही सों लहे।
नातर समुझि न सके अहन्ता के गहे।।
मूरख तजि के सयान क्यों न ले आसरे।
श्रीहरिव्यास रस–प्रेम की मूरति प्रगटे तासुरं।।२८।।

❊ विनय 'पद' ❊

विनय सुनो हरिव्यास जू मेरे।
मोहे भरोसो इक चरनन को, नाहिन गति बिन तेरे।।
भूलि फिर्‌यो जग–बन–बिहडे में, दुख पायो दिन ढेरे।
अब करुना करि चेत करायो, राखो चरनन नेरे।।
कबहु–कबहु मन इत उत भटकत, समझावत हम हारे।
'दासगोपाल' बनाय लेहु प्रभु, मो दिस नेकु निहारे।।२६।।

श्रीमत्स्वयम्भूरामदेव जू की बधाई

❊ पद (राग–केदार) ❊

स्वभू सुभ तिथी सोभा दरसाये।
श्रीहरिव्यास चरन सरन रहि, जस पताक फहराये।।१।।
आन धर्मगामी जेते नर, सुधर्म सबनि दृढाये।
सास्त्र निपुन सब तत्व के वेत्ता, माया मोह जराये।।२।।
नास्तिक आस्तिक भये सहजहि, वैष्णव चिन्ह धराये।
सान्त दास्य वात्सल्य सख्य, श्रृंगार रस समुझाये।।३।।
व्रज की रीति भाँति यथावत, सरनागत दरसाये।
वृन्दावन माधुर्य नवल नव, नित्य विलास दिखाये।।४।।

अष्टसखी रंगदेव्यादिक, पिय–प्यारी मन भाये।
सुंदर महल टहल चोंप भरि, रंग में रंग बढ़ावे।।५।।
श्रीहरिप्रिया हितू कृपा बिना, नाहिन आन उपाये।
यह रस–रास लहे उपासक, या बिधि मनहिं लगाये।।६।।
कार्तिक सुक्ल अष्टमी सुभ तिथि, पुन्य क्षेत्र जहाँ जाये।
जननी–जनक, विप्रकुल भूषन, सब जन अति हरषाये।।७।।
नर–नारी मिलि मंगल गावत, विविध वाजंत्र बजाये।
हरषि–हरषि मिष्ठान रतन बहु, पाट पटांबर लाये।।८।।
मात–पिता कहत पुरोहित सों, नामकरन कराये।
सोभा सदन देखी द्विजजन, सोभा नाम धराये।।९।।
कर कटि चरन गले सबन में, आभूषन पहिराये।
टोपी कुरता रेसम के जरी, गोटा लगत सुहाये।।१०।।
घुटवनि चलत फिरत आँगन में, लखि उर हरष न माये।
मात कबहु लै गोद नचावत, नाचत मृदु मुसिकाये।।११।।
गावत कबहु अनुरागे प्रिय, माधुरी मूरति लाये।
यहि विधि लीला सुभानना सखि, छै–दोय वरस बिताये।।१२।।
ता पाछे हरिव्यासचरन भजि, 'गोपालदास' बलि जाये।
मंगल गावत सार–सुख ले, श्रीवृन्दावन भाये।।१३।। ३०।।

सिद्धान्त पदावली

❊ पद ❊

मन तू हरि–हरि क्यों न कहे।
तजिके–आस पास विषइन के, हरि पद क्यों न गहे।।
जो कछु संपति विपति बनि आवे, निज कृत कर्म सहे।
'दासगोपाल' चरन सरन सुख, शास्वत क्यों न लहे।।३१।।

※ पद ※

अवनी पर राजत श्रीवृंदावन धाम।
सत चित आनँद की द्रुमवेली, रसिकजन विश्राम।।
जहाँ–तहाँ प्रफुल्लित पक्षी, नाचत करि कल गान।
नागर–नवल नवीन–प्रिया को, नित करि रहे सन्मान।।
मोर चकोर सुक पिक चातिक, अली के दल अभिराम।
यमुना तीर समीर धीर गति, सौरभ जुत दिन–जाम।।
हंस सारस किलोल करत नित, 'गोपालदास' तिहिं ठाम।
बहुत भाँति फूलन की सोभा, को वरनी सके ललाम।।३२।।

※ पद ※

लाल वरन लाल चरन, ललना अरुनाई।
निसवासर ध्यान धरत, रसिकन मन भाई।।
महिमा अमित वरनौ कहा, कहे जो थोराई।
'गोपालदास' हृदयाभरन, गुरु प्रसाद पाई।।३३।।

※ पद ※

अब हरि मो दिसि नैंन कर्यो।
जैसे स्वर्णकार कर कुन्दन लिये चहत गढ्यो।।
बारंबार वन्हि में डारत, पीटत है निडर्यो।
तैसे मो संग करत परिश्रम, रख्यो न चहे कसर्यो।।
कबहुँक भय करि भटकूँ इत–उत, निरखूँ कहुँ ठहर्यो।
'गोपालदास' प्रभु जानत जियकी, लै निज चरन धर्यो।।३४।।

※ पद ※

देख लिया हम इधर–उधर से, कृपा करना यह सीखा।
सीधा के संग सीधा चलता, तिकड़मि के संग तीखा।।
रीझ गया दिया खोलि खजाना, रीझा न डारे भीखा।
'गोपालदास' का स्वामी अनोखा, गुरु ने दिखाया दीखा।।३५।।

✻ पद ✻

अभी तक नहीं आता, इस वख्त समझ आया।
जोलों रहे जान तोलों, गोविंद गुन गाया।।
यही बात मुझको मुरसद ने फरमाया।
'गोपालदास' अबतो ये बात मनको भाया।।३६।।

✻ पद ✻

कियो सब हरि ही को होय।
मोसों कहा पूछत हो भैया, कहा सुनाऊ तोय।।
जिहि मग चलन चहत न कबहूँ, तिहि मग चलत सवेरो।
सबै सयान काम नहिं आयो सुनत भागवत टेरो।।
जाके यह करतूत हम ताके, ताकी कहन माने।
'गोपालदास' क्यों समैं गमावत, सुनत सबन के ताने।।३७।।

✻ पद ✻

बबुला जल मह करत कलोल।
मोह निसा की नींद में सोयो, सुन्यो न सतगुरु बोल।।
कबहुँक सुत स्वजन मुख जोयो, कबहुँक जोयो तिरिया।
मूरख याको भेद न जान्यो, परिगयो माया धिरिया।।
'गोपालदास' कहे कर जोरे, बुद्धि बल चले न मेरी।
करुना करि मोपे पार लगावो, आयो सरन हुँ तेरी।।३८।।

✻ पद (मलार) ✻

मोर मन चिंता रहत दिन–रैन।
स्याम जलद बिन सचु नहीं पावै, देखन चहे भरि नैन।।
अति विकराल ग्रीषम ताप त्रय, दिन प्रति भयहि दिखावत।
तउ धीरज धरिये मयूर मन, आसा समय विहावत।।
उमड़ी स्याम घटा हिय गगने, प्यारी दामिनी साथ।
'गोपालदास' निरखि मन मौरा, उमगन में नहीं मात।।३६।।

※ सायरी ※

परवाह नहीं हम करते हैं,इस बात को ख्याल में लाकर के।
मालीक जब करवाता है, अपसोस किसलिये कीजिये।।४०।।

※ पद ※

वंदौ सकल बन के संत।
जिनकी महिमा वेद वखानत, पायो न अजहु अंत।।
करि करुना जिन–जिन जन उपर, तिनके ताप नसंत।
'गोपालदास' अब सरन आयो, तजहु न जगत हसंत ।।४१।।

※ पद ※

हे हरि क्यों नहीं सुनत पुकार, अब तो आय परे तेरे द्वार।
तुम स्वामी हम सेवक तिहारे, और कौन रखवार।।
बहुत दूरते संग लगे बैरी, लरत गये हम हार ।
'गोपालदास' सहाय इक तुमही, जैसे लेहु विचार।।४२।।

※ पद ※

दिन द्वै प्रभुता पाय नर–नारी।
गिनत न काहु, त्यागे हरिगुरु, कीनी अपनी ख्यारी।।
साधु न सूझत बाट न बूझत, सिस्नोदर ही पारी।
'गोपालदास' ऐसे नरकी सों, जमदूतउ गये हारी।।४३।।

※ पद ※

देखो या मन पामर की रीति।
जुगल–चंद अनुराग छाँड़िकें, करें जगत सो प्रीति।।
सुख के सदन चहे हतभागी, धरे बारु की भीत ।
'गोपालदास' पछिताय रहेगो, जनम जाय बीत।।४४।।

※ पद ※

कोई न हमारा हम न किसीका । हम तो रहेंगे वृंदावन जिसीका ।।
पूरब से आया वरषत पानी। विषय के झुला झूले अभिमानी।।

विनती सुनो जरा गुरु बाबा मेरे। नजर न आवे दूजा बिनतेरे।।
हमने सुना है नाम तिहारा। सरनागत जन भव भय हारा।।
'दासगोपाल' को आस तिहारी। करो न निरास हे कुंजबिहारी।।४५।।

※ कुण्डली ※

साईं जेतो देत है तेतो में करि संतोष।
ताते अधिक जो चाहेगो ताको रहे न होष।।
ताको रहे न होस है गयो वारह वाटू।
भूतन के जैसे फिरे क्यों बनि आवे ठाटू।।
कहे 'दासगोपाल' ते नर जग के माहीं।
जीवत मृतक समान इच्छा नहिं मानत साईं।।४६।।

※ पद ※

अपनपो आपुन ही में पायो।
काम क्रोध मद मोह लोभ ने, बहुत ही नाच नचायो।।
दर-दर भटकि फिर्यो या जगमें, सुख संतोष न आयो।
'गोपालदास' हरिव्यास कृपा, करि जग फंद नसायो।।४७।।

※ पद ※

प्रभु तुम बिन स्वारथ उपकारी।
एसो को त्रिभुवन में तो सम, सरनागत भयहारी।।
या जग सब स्वारथ के साथी, माया-मद वौराये।
इनको संग कियो हम मोहन, सुख संतोष न पाये।।
नहीं इच्छा कोई, स्वारथ इक, तुब पद-कमल उर आसा।
'गोपालदास' जन रक्षक नित, श्रीमुख बचन प्रकासा।।४८।।

※ पद ※

सबते हरि भजन है सार।
और करम धरम बहु वरने, हमें लगे जंजार।।

पति बिन फीको लगे तियन के, किये सोलह सिंगार।
'गोपालदास' हरि चरन सरन बिन छुटे न जम के द्वार।।४६।।

✻ पद ✻

जगत सब संभ्रम में गये भूल।
नवकिसोर नव नित्य कुंज जहँ, तहँ न भये अनुकूल।।
खोये समय बाक पटुता में, गई न उर की सूल।
'गोपालदास' निंबभानु पद, सुख अमित गयो भूल।।५०।।

✻ पद ✻

तेने ऐसो कियो कहा करम।
खायो पियो विषय रस भोयो, भूलि गयो निज धरम।।
को हेतु कहाँ ते आयो तू , काहे फिरत दौरे।
अजहुँ ना कछु कियो अभागे, लखे न जबलौं ठौरे।।
देखन चहे देख वाके दिसि, सुनन चहे सुनु वाकी।
जब लग भूल भूल पुनि आगे, रह्यो न गयो तम ताकी।।
श्रीगुरु चरन–कमल चिंतन नित, सुमिरन उन मुख वानी।
या बिन बढ़े जगत–जात्रा में, 'गोपालदास' ते अज्ञानी।।५१।।

✻ उत्सव के पद– (राग–वसन्त) ✻

श्रीवन नित्य निकुंज नवल वर राजहीं।
श्रीरंगदेवी आदि सकल सुख साजहीं।।
प्रथम मनावहीं मृगजनैंनी बाल को।
अति अधीन मनुहार करावति लाल को।।
जाको रुप अनूप और नाहिने वियो।
ताहि कुमरि को रूप सहजहि मोह लियो।।
चिबुक परसि इक ओर भुजन भरि लावहीं।
जुरि नैंनन सों नैंनन मधुर मुख गावहीं।।

अहो–अहो सुकुमारि सिरोमनि स्वामिनी।
मो नैनन को भूषन हो अभिरामिनी।।
प्रथम समागम हेत झिझकति नागरी।
ससि सनेह निहारि उमड़्यो उर सागरी।।
नागर मृदु मुसिकाय कमल कर लायके।
कंचुकि बंध विमोच कछुक रुख पायके।।
कबहुँक चूमि कपोल अधर–मधु पीवहीं।
सिथिल किये कटि डोरि जो सुख की सीमहीं।।
परम रुचि प्रति रोम रोम सचु पायके।
करत बिहार विनोद नव–नव भायके।।
आनंद के 'रतनागर' सहज सरूप हो।
सहचरि देत असीस जियो जग भूप हो।।५२।।

※ पद ※

सुंदर लाल रसाल बाल नव, खेल बसंत यों खेलें।
सहचरि सौंज सजी सब भाँतिन, अबीर गुलाल यों मेलें।।
प्रीतम के संग यो छवि पावति, भामिनि दामिनि केले।
'गोपालदास' या सुखहि विलोके, श्रीहरिव्यास कृपाले।।५३।।

※ पद ※

नव निकुंज सदन में प्यारी, सुमन अंग–अंग फूले।
भ्रमर लाल सौरभ मंडराने, तन मन की सुधि भूले।।
और सकल सुखकरि न्यौछावर, एक एव सुख झूले।
'रतनकला' सरस्यो सरसायो, तन सों तन अनुकूले।।५४।।

※ पद ※

प्यारी तन सुमन फुले वसंत। पिय भ्रमर सुख सौरभन अंत।।
जहां मधुक सम रसभरे कपोल। चूँमत मोहन मन भये अलोल।।
कुच कमल कर परसत सिहात। सुधि न रही निसवासर बिहात।।५५।।

✲ (होरी) पद ✲

आज की उमँग कछु कहि न परे।
होरी में गोरी रसबोरी, पिय को अंक भरे।।
भरि पिचकारी हँसि-हँसि छोरी, अवीरनि वृष्टि करे।
'रतनकला' सरस्यो सरसिज से, नैना आनि अरे।।५६।।

✲ (हिंडोरा) पद (राग-मल्लार) ✲

लटकति चली रमकी झमकी ।
नीरद से नागर पर प्यारी दामिनी सी दमकी ।।
सुरत हिंडोर रची हितु सजनी झूलत दोउ सुकुमार ।
किलकि किलकि कटि लचकनि बाढ़ी, जौवन सरिता पार ।।
रूप कूल इत उत दुहुँ दिसिते, धीरज द्रुमनि ढहाय ।
दोउन के मन-मीन भँवर परि, विछुरे देत गहाय ।।
इहिं विधि सेवे संतत सहचरी, निरखे आनंद केलि।
स्याम तमाल प्रीतम सों लपटी, प्रिया 'रतन' सी बेलि ।।५७।।

✲ (रास) पद (राग-केदार) ✲

रास रच्यो पिय आज अनूपम।
नृत्य गीत बाजे विविध बिधि, घटि बढ़ि नेकु न होत रहे सम।।
खग मृग अग पग जित-जित देखें, तित-तित परमानंद रहे रम।
'रतनकला' सरस्यों अंग-अंग में, संग सखी अवलोकत है हम।।५८।।

✲ पद ✲

देसि सुधंग अलापत गोरी।
सह प्रीतम मरकत मंडल पर, नृत्य करत कल नवल किसोरी।।
उरप तिरप में सुलप सुलय गति, हँसि चितवनि भ्रू मोरी।
'रतनकला' स्वामिनी सुख सरसनि, वरषनि छवि नहिं थोरी।।५९।।

❊ पद ❊

नाचत मोहन, मुरली में अलापत मनोहर प्यारी।
चंद्र–गति मृदंग बजावति सहचरी वीन सरस गति न्यारी।।
मृदु मंजीर उमंग बढ़ावति ताल धरति सुकुमारी।
रतनकला स्वामिनी मुख धुनि सुनि पीय कहत बलिहारी।।
नृर्तत लाल मुरली धुनि सुनियत ताल धरति सुंदरी अति भोरी।
सकल सौंज लिये संग सहचरी उमंग बढ़ावति थाह न थोरी।।
वदनचंद्र कन स्वेद सुसोभित रीझि निवेरत परस्पर जोरी।
'रतनागर' सम रूप रंग रस, अनुराग की लहरे उलहोरी।।६०।।

(व्याह)

❊ कवित्त ❊

कुंज सुख पुंज जामे नवल किसोर दोउ,
करत हैं केलि भीने व्याह–रस–रंग में ।
लाडिली लजीली कटि लचकत चले जब,
निरखि के पिय प्रान रहत न अंग में ।।
इत उत चितै प्यारी पियके ओर निहारी,
कुच बिच लइ धरि झपटि उमंग में ।
'दासगोपाल' के नैंन बसि रहो दिन रैन,
हितु सहचरी सैन छिन तजहुँ न संग में ।।६१।।

❊ पद ❊

बन विवाह रच्यो सुखदाई ।
ये दूलह दिन दुलहिनी प्यारी, सोभा झर रही छाई ।।
भाग सुहाग भरे नित बिलसे, उपमा को नहीं पाई।
'गोपालदास' हरिव्यास कृपा, करि यह सुख दृग दरसाई।।६२।।

मधुर–रस पदावली :– (राग–विभास)

रूप देस के भूप री माई, श्रीवनरानी अनूप रूप।
लाल निहारि नैंना न अघाये, कहत अहारी अनूप रूप।।
किहि बिधिना किहि अति सुदेस महँ, निरमायो ये अनूप रूप।
बन मनु 'रतनागर' मह फूली, कृष्णमधुप हितस्वर्णकमलये अनूप रूप।।६३।

✲ पद ✲

बलि–बलि जाऊँ जुगल के चरन की।
प्यारी दामिनी सी दुति सोहें, प्यारो मेघ सम वरन की।।
रूप–माधुरी प्रेम–रससागर, निरत निरंतर तरन की।
उमड़ि उमड़ि चली सुखसरिता, रतन कला उर भरन की।।
हौं इक बात पूछुँरी तोसों, दुराव न कर मृगनैनी।
पियके अंक निसंक सुख बिलस, जानि बिहात है रैनी।।
अँग–अँग सिथिल, सिथिल पट भूषन, बिलुलित भई कचबैनी।
तदपि नैंन व्याकुल अति प्यासे, नेकु न मानत चैनी।।
भरि अनुराग गान करे मनो, पान करन रस सैनी।
रतनकला सुनि चपल चली तिय, पिय के उर उरझैनी।।
झुकि आई अलकावलि गंडन, ऊपर आनि ठनी।
पिये अधर–रस सुधि नहिं तनकी, सोभित स्वेदकनी।।
करत केलि वर बाल लाल खचि, कंचन नीलमनी।
अंचल छोर स्वेद निवारत, रंगदेवी अपनी।।
करत वयार नेह मनु उमड्यो, चौंर लिये सजनी।
'रतनकला' प्रवीन याहि विधि, सेवत धन धनी।।६४।।

✲ पद ✲

लड़ैतीजू के सोभित पीक कपोल।
रदन छदन मनु मदन जगाये, बोलि लियो मृदु बोल।।

पूजन करि कर कमल दलन सों, मनहरि लेत सुडोल।
'रतनकला' अँग–अँग लपटाये, बंधन दिये सब खोल।।६५।।

※ पद (राग–देस) ※

नहीं सुरझत पल एक को धनी धन रहें उरझाय।
अधर–अधर जुरि उर सो उरज, अरि रहे अंग–अंग समाय।।
तन मन की सुधि विसरिपरे हो, सुधासव प्याय पिवाय।
निकट निरखि बलि 'रतनकला', हितु सहचरी आज्ञा पाय।।६६।।

※ पद ※

रहसि में खेलति कौतुक बाला।
मन के मनोरथ पूरन करि, लालन कियो निहाला।।
सरमेवर परवत पर ठाढ़ी, देखि चकित मृग माला।
रतनकला' स्वामिनी सुख सरसनि, बरषनि प्रेम रसाला।।६७।।

※ पद ※

बिहरत कुंज निकुंजनि प्यारी, प्रीतमके रसमाती।
उर सो उरोज जोरि कटि सों कटि, कहत सुखद मुख बाती।।
अधर–सुधा आसव दोऊ पीवत प्रेम–रंग रसमाती।
'रतनकला हितू सजनी संग, निरखि–निरखि बलि जाती।।६८।।

※ पद ※

कौन विधि ने सुघर या जोरी बनाई।
कुंदन की सी झलक री माई, स्याम बरन छवि छाई।।
सुघर सुघरइ देखि चकित भई, मुख कछु कहत न पाई।
दुलह दुलहिन सहज सदाई, बिहरे हँसि गर लाई।।६९।

※ पद ※

नीकी परनी तरुनी बनी।
छवि गंभीर नीर पिय पैरत, नीरज निरखत घनी।।

थक्यो थाइ न पहुँच्यो पार, अति आतुर त्रान भनी।
कियो सहाय रतन कलस जुग, परसि हरषि करनी।।७०।।

⁂ पद ⁂

दान देरी प्रान बल्लभा प्यारी।
तो पिय द्योस रजनी निरंतर, उर में ध्यान तिहारी।।
असन–वसन आभूषन जीवन, तूही तोहि निहारी।
'रतनकला' परताप तिहारी, पायो नाम बिहारी।।७१।।

⁂ पद ⁂

राजत कुंज–महल पिय प्यारी।
जेमत–रूप रसासव–पीवत, परम रम्य सुखकारी।।
पय रुचिकर सिताम्बु तापर, हँसि–हँसि के दइ डारी।
जेमत ये सराहत सहचरी, 'रतनकला' बलिहारी।।७२।।

कवित्त

त्रिविध समीर बहे तरनी–तनया तीर,
सघन विपिन केलि करत जुगल वर ।
रंगदेव्यादिक सहचरी आसपास सोहें,
हास परिहासन सों उर उमगनि भर ।।
बिच–बिच अचवत अधर सुधा आसव,
निरखत चकोर ज्यों वदन विधु निकर ।
'रतनकला' रतन ज्योति में प्रवीन पिय,
तिय के उरोज परसत मरसत कर।।७३।।

दोहा

सत्तर सों चलि भामिनी, चरन उठाय प्रवीन ।
पिय को हियो अति व्याकुल, लखि तुव दिसि तन छीन ।।

⁂ पद ⁂

अब विलंब न कीजे प्यारी, सनमुख होउ निकुंजन माहिं ।
अतिहिं सुखद फूली फुलवारी, तैसिय सीतल द्रुम की छाहिं ।।
प्रीतम प्रीति बिबस चितचाहे, निकसत बचन मुख नाहिं ।
आस 'रत्नाकर' तरिवे को, लई लगाय उर माहिं ।।७४।।

⁂ सहज के पद ⁂

प्यारी तुव नैंन मधि मेरो तन,
लसत है तैसी तुव तन लसत,
किधों नाहिं मेरे नैनन में।
मोहिं देहु बताइ सुकुमारी हो,
साँची करि मानो सुनि तुव नैनन में।।
पिय की प्रीति परखि नव नागरी,
कछु चतुराइ लखि सैनन में।
'रतनकला' प्रवीन रसिक दोऊ,
रोम–रोम पगि रहे मैनन में।।७५।।

⁂ पद ⁂

बसो मो नैंन उभै सुकुमार।
प्रेम–माधुरी रूप–सार तन, कोमलता कूपार।।
निरूपम पटतर को और न, पायो करत विचार।
'रतनकला' प्रानन न्यौछावर, तृपति न भई रहि हार।। ७६।।

⁂ पद ⁂

बन की सोभा वरनी न जाई।
आप श्रीमुख हरिव्यास बखाने, ललना–लाल लुभाई।।
बाग विविध फूलन की न्यारी, कुंज तैसी तहँ छाई।
'गोपालदास' यह अचरज देखो, खग मृग औरे भाई।।७७।।

※ पद ※

पिय अपने मन माहिं सिहात।
निरखि नवीन रूप नववयसी, छिन–छिन उर लपटात।।
ज्यों कनक चंपे की माला, उर धरि और न बात।
'रतनकला' स्वामिनि सुख सरसनी, पिय सों मिलि रंगरात।।७८।।

※ पद ※

सखियन सरबस जुगल किसोर।
जैसे रंक थाती अवलोके, कामी कामिनी ओर।।
ज्यों चकोर चंदा चातक जल, मीन लीन निसभोर।
'रतनकला' इनहू ते अधिकतर, इनही के चितचोर।।७६।।

※ पद ※

वृंदावन सरसिज सों फूल्यो, सबन के प्रान अधार।
नव जलधर सम भ्रमर अनूपम, तापर करत गुंजार।।
आसपास सरसिज कछु फूले, तिनके सेवन हार।
'रतिकला' उद्दीपनहारी, तजत न कबहु लार।।८०।।

※ पद ※

पिय हिय ललचात सुनिवेको तनक,
लड़ैतीजू के मुख की बात।
दंतपंक्ति ऐसी अमृत की वीज मानो,
बोलन सुधा को फूल जब तब झरत जात।।
रूप–माधुरी निरखि पिय थाहत अपनो,
सुकृति न पावत सोच विचारि रहि जात।
'रतनाकर' सम कृपा ताके अबलंव,
रहत लाल सचु पावत दिन जात।।८१।।

❋ पद ❋

नैंनन निरखो अपूरव रूप।
तरुनि रतनमनी कुंजन राजति, प्रीतम प्रान सरूप।।
भये न होने सुने न देखे, ऐसो सुखद सरूप।
प्रनत जनन के हित तन धार्‌यो, जुगल सुधाकर रूप।।८२।।

❋ पद ❋

प्रीतम मेरे प्रानन हूते प्यारो।
छिन विछुरि परै मीन जल सों, ताहु ते दुख भारो।।
दूध सफेदी न छाँड़े सजनी, ता विधि मिलन हमारो।
मो उर 'रतन' संपुट में प्यारो, मैं तासों नहिं न्यारो।।८३।।

❋ पद ❋

प्यारी मोय एक बचन तुम देहु।
जैसे अब याहि विधि संतत, मति कहुँ भूले एहु।।
ज्यों कपूर गुंजा के साथी, मेरे जीवन तेहु।
'रतन' जड़े ज्यों रहों निरंतर, बोलि लियो हाँ वेहु।।८४।।

❋ तोटक छन्द ❋

पिय प्रान मेरी स्वामिनी। विनै सुनो अभिरामिनी।।
मोपै यों करुना करो। मोचित तहाँ पिय पै ढरो।।
प्रेम सनी रस सों भरे। दिव्य अनंग कलोल करे।।
श्रीजमुना तट कुंज गहे। प्रसून सुवास चितै उमहे।।
जब वंक चितै पिय अंक चहो। सुख–सागर वाढ़ि रहे अथहो।।
कहे 'गोपालदास' यों प्रीति पने। तुव चरन विनु नहीं आन मने।।८५।।

❋ पद ❋

दोउन की लगन लगी है ऐसे।
जैसे जल में जल समोये, व्योरो होय कहो कैसे।।

तिनमें वे वे तिनमें 'भोये, तन मन की सुधि भूले।
'रतनकला' सहचरी सँभारे, करि राखे अनुकूले।।८६।।

❊ पद ❊

धनि श्रीवृंदावन की धरनी।
जापै कृपा करे सो पावै, लगे न अपनी करनी।।
जाकी सरस माधुरी रसिक, हंस निज मुख वरनी।
'गोपालदास' कहत अपने सों, रहियो याके सरनी।।८७।।

❊ पद ❊

साँवरो कमलकुसुम अनुरागी।
मूँदि जात जब नेह रजनी में, मानत हों बड़भागी।।
जमुना तीर कदंबनि सेवत, तन मन प्रान समोये।
'रतन ज्योति' प्रेम के सागर, उभै वर नागर भोये।।८८।।

❊ पद ❊

सोरह सिंगार किये सुकुमारी, चित चोरत नीके।
लाल अचेत होत छवि देखत, तृपति न पावत जीके।।
बहुरी सोभा सिंधु महँ तैरत, बलिहारी कहि सीके।
रस के 'रतन' बिहारिनि मोहन, उर ज्यों राखत लीके।।८६।।

❊ पद ❊

लड़ैतीजू की बोलन की बलिहारी।
सुनि–सुनि रोम–रोम सचुपावे, लाल कहे बलिहारी।।
देखि सिहाय कहति सब सजनी, जीवन धन बलिहारी।
'रतनकला' स्वामिनी सुख सरसनी, रस वरसनी बलिहारी।।६०।।

❊ पद ❊

विपिन वर द्रुम–दल बेली फूले।
सरस सुवास सुधा न समता, फल लागे अनुकूले।।

पिय मन भृंग फूलन में माते, जानि सजीवनि भूले।
दूलह रतन उर धरि दुलही, दुलरावे समतूले।।६१।।

❊ कवित्त ❊

प्यारीजू की रूप रस माधुरी में मन पग्यो,
सराहत सुकुमार नैंन नीर छाये हैं।
निरखि निकाई सुख–सागर में डुवि रहे,
थाह न सुलभ याते पद–जुग ध्याये हैं।।
मुख मुसक्यानि मंद सरस लोचन संग,
उरन उमंग प्यारी पिय उर लाये हैं।
कौन सुकृति को फल लून्यो है अटल पिय,
सुख की अवधि पर बलि–बलि जाये हैं।।६२।।

❊ पद ❊

लालन प्यारी प्यारी लालही भावे।
ज्यों तन छाया त्यों पिय प्यारी, उमगि–उमगि गुन गावे।।
ये न्योछावर सब कछु कीनो, त्यों समर्पण कियो वे चावे।
रसको खेल दाव 'रतनन' को, दोउ हारे जीते दोउ दावे।।६३।।

❊ पद ❊

अंग–अंग सौरभ रस साने।
मोहन के मन मोहिनी स्यामा, मोहन मोहनी के मन माने।।
विपुल उमंग विवस चित भोये, विछुरन को गति ज्यों जल मीने।
प्रेमरंग 'रतनागर' दोऊ, एक छाँड़ि एक रहत न छीने।।६४।।

❊ पद ❊

पिय पत्रावलि रचत उरोजे।
केसर घोरि अतर अरगजा, और अगरसत थाइ न चोजे।।
जैसे चहे लहे ताहि विधि, जो अभिलास छिनहि छिन खोजे।
चिद चिंतामनी एक रोम पर, 'रतनकला' न्योछावर रोजे।।६५।।

※ पद ※

जब–जब निसरत तुव मुख वाणी, मो उर उलहत सुखहिं अपार।
और कछू नहिं चाहत प्यारी, एक कृपा अवलंबन हार।।
देखत रहो मो दीन हीन तन, हों वपुरा यह चाहन हार।
'रतन ज्योति' बाढ़त जब–जब उर, बूड़नहार तू सेवनहार।।६६।।

※ पद ※

रसानंत सागर वर नागरी, सौरभ रूप अनंत।
तन सुकुमार सबद आकर्षी, मन मधुकर भये मंत।।
वृंदावन जल–थलचर और न जानत कहा कहंत।
सब सुख 'रतनाकर' महँ भूले, विहरे जुग आदि न अंत।।६७।।

※ पद ※

अंग–अंग चाहत विलग न थोर।
प्रेम रंग माधुरी सौरभ रस, सब गुन भाग सुहाग विभोर।।
हँसि–हँसि निरखि–निरखि सचु पावत, दोउ दोउन के प्रान अकोर।
यह सुख वाँट परी सखियन की, 'रतनकला' छिनछिन नहिं छोर।।६८

※ पद ※

प्यारी तो बिन कैसे रहेंगे ये प्रान।
तू चिर संगी विछुरी न जाऊँ, सदा सनातन भान ।।
सपथ करें अब हिलमिल दोऊ, मुख सो बचन प्रमान।
रस 'रतनाकर' मिले रहत नित, हौं माँगत यह दान।।६६।।

※ पद ※

देखो भैया यह कैसो तमासा।
कोटि उपाय करत असत को, सत को सहज प्रकासा।।
कहत सुनत सब जनम विगार्‌यो, गई न मन की आसा।
'गोपालदास' स्वामी बन माहीं, रहत निरंतर पासा।।१००।।

✲ पद ✲

तरी बिन तरत भुजन मझधार।
इत नीरस उत सार विलोके, मनमें करत विचार।।
सार गहु नीरस भल छूटे, जनम–जनम को झार।
'गोपालदास' अस जानि लग, मारग पायो प्रान अधार।।१०१।।

✲ पद ✲

अब सब चिंता मिट गई मनकी।
जुगल किसोर वृन्दावन बिहरें, कृपा कोर भई जिनकी।।
सब संयोग सहज बनि आयो, संग मिली सखियन की।
'गोपालदास' निज भाग सराहे, जनम–मरन छूट्यो अबकी।।१०२

✲ पद ✲

प्यारीजू मो उर सीतल करति।
कासों कहों को यह जाने, जैसे मेरे अरति।।
तीनों लोक भुवन चतुर्दस, काहु सों नहिं सरति।
तिहुँ काल इहि वानिक राखौं, हेम 'रतन' ज्यों जरति।।१०३।।

✲ पद ✲

लड़ैतीजू कब उर रस सरसावोगी।
गद–गद स्वर विपुल पुलकावलि, रोम–रोम प्रगटावोगी।।
और कछू नहिं चाहत प्यारी, यह आस पुरवावोगी।
'गोपालदास' पर करि कृपा, रस वृष्टि वरषावोगी।।१०४।।

✲ पद ✲

धनी हम बने जुगल धन पाय।
खात खवावत देत दिवावत, कबहु न घाटो जाय।।
श्रीगुरुदेव कृपा करि दीनो, जुगल खजानो बताय।
जबते दास भये 'गोपालहिं, गिने न रंग अरुराय।।१०५।।

❊ पद ❊

रस सरिता बहत निरंतर प्यारी, मो उर सागर भरत न एरी।
कासों–कहों को यह जाने, उपाय न सूझे बिन इक तेरी।।
जैसी बने तैसी करि सीतल, अब न करो जिन तनकउ देरी।
प्यायो ज्यायो नागरी अबलों, क्योंहूँ आरत दूरि करि मेंरी।।१०६।।

❊ पद ❊

प्यारीजू लाल याही ते लहे चैन।
कोकनद महँ कली इंदीवर, वास लहे चिते लैन।।
पीवत सुधा तृपति न पावे, विसरी जाय दिन–रैन।
रस 'रतनाकर' लीन जीवन जरी, परस्पर मिलि दैन।।१०७।।

❊ पद ❊

प्यारी चलो देखें इक सुठौर।
पंछि न बोले बाजे न बाजे, ना काहु विधि सोर।।
आपहिं हम तुम गाय बजावे, दै–दै प्रान अकोर।
'रतनकला' सहचरी संग सोहें, बोले बोल अबोल।।१०८।।

❊ पद ❊

सघन कुंज चहुँ दिस हरियाली, सुखद सरोवर नीर।
कंज समूह ऊपर अलि गुंजत, सीतल सुगंध समीर।।
विविध तरुवर फल फूलन सों, बेली सुसोभित पास।
कंचन धर खचित रतनन सों, चित्रित अमित उजास।।
सुभग कुंज मधि किशलै कमल, दलन सों रचि रुचि सैन।
तापर जुबवर रुचिर सुसोभित, लज्जित लखि रति मैन।।
सब सुख सौंज लिये हितु सजनी, पूजत ललना लाल।
जै–जै कहि पुहुप वरषाये, निरखि–निरखि छवि जाल।।१०६।।

✻ पद ✻

हँसि–हँसि कहति नवल किसोरी।
मन की जानि सहचरी पिय को, विवस न होन देत रस वोरी।।
सुधा पिवावत प्राननाथ कहि, उरज परसिकर मोद न थोरी।
चौगुन 'रतनज्योति' उर बाढ्यो, सहचरी देत असीस त्रन तोरी।।११०

✻ पद ✻

चाह चाहन में तरसायो।
मानो सुख वादर झर लायो, रस–सागर सरसायो।।
द्रुम बेली सचुपायो, उर आनंद हरषायो।
नट नागर नव कुंज सदन में, 'कला रतन' दरसायो।।१११।।

✻ पद ✻

रूप उजारी प्यारी फूली फूलवारी।
महकत अंग–अंग मकरंद रारी।।
प्रीतम भ्रमर प्रान जीवन अधारी।
'रतनकला' सरसायो बलिहारी।११२।।

✻ पद ✻

दोउ दोउन के हाथ विकाने।
दोउ दोउन के ओर निहारे, दोउ कहे दोउ माने।।
ये अचेत होत जब कबहु, ये सचेत करि जाने।
'रतनकला' प्रवीन सहचरी, राखे रस में साने।।११३।।

✻ पद ✻

चित वित आकर्षे छवि प्यारी, पलक ओट न रहत प्रान।
तन मन रोम–रोम सचु पावे, विछुरन नेक न भावत भान।।
किशलै सुमन सेज पर प्यारी, देहु दया करि जीवन दान।
'रतन ज्योति' मो उर चौगुन अब, करि उपचार छाँड़ि विधि आन।।११४

❊ पद ❊

प्रिया वानी सुधा–रस सो सनी।
ता ऊपर सौरभ रस वरषत, अमृत दृष्टि बनी।।
रूपामृत अँग–अंगनि सरसे, कर पद कंज मकरंद घनी।
उरज कमल नित प्रान परिपोषत, प्रीतम 'रतन' मनी।।११५।।

❊ पद ❊

रीतो नेकु न जात सही।
वासो वो वो वासो भिरि के, बानिक बने यही।।
तुम दोऊ मिलि प्रान हमारे, पोषत क्यों न लही।
'रतनकला' संपति मो उर की, मानो इतनी कहीं।।११६।।

❊ पद ❊

सोहत झुकि–झुकि चरन धरे।
कैसी फवि रूप रस माधुरी, प्रेम प्रवाह परे।।
जाको तरषि–तरषि दिन बीते, सो अब प्रगट खरे।
'रतनकला' जीय की अभिलाषा, आज आई फरे।।११७।।

।। इति श्रीगोपालदासजी महाराज की वाणी "श्रीयुगल–कृपा निधि" सम्पूर्णम् ।।



समाज में प्रथम गाये जाने वाले मंगल पद–

✲ श्लोक ✲

श्रीहंसञ्च सनत्कुमार प्रभृतीन् वीणाधरं नारदं ।
निम्बादित्यगुरुञ्च द्वादशगुरुन् श्री श्रीनिवासादिकान् ।।
वन्दे सुन्दरभट्टदेशिकमुखान् वस्विदुसंख्यायुतान् ।
श्रीव्यासाद्धरिमध्यगाच्च परतः सर्वान्गुरुन्सादरम् ।।

✲ दोहा ✲

जै जै श्रीहितु सहचरी, भरी प्रेमरस रंग ।
प्यारी प्रीतम के सदा, रहत जु अनुदिन संग ।।

✲ पद ✲

मंगल मूरति नियमानंद ।
मंगल जुगलकिसोर हंस वपु, श्रीसनकादिक आनंद कंद ।।
मंगल श्रीनारद मुनि मुनिवर, मंगल निंब दिवाकर चंद ।
मंगल श्रीललितादि सखीगन, हंस बंस संतन के वृंद ।।
मंगल श्रीवृंदावन जमुना, तट बंसीवट निकट अनंद ।
मंगल नाम जपत जै 'श्रीभट', कटत अनेक जनम के फंद ।।१।।

✲ पद ✲

नमो नमो नारद मुनिराज ।
बिषयिन प्रेम भक्ति उपदेसी, छल बल किये सबन के काज ।।
जिन सुचित्त दे हित कीन्हो हैं, सो सब सुधरे साधु समाज ।
'व्यास' कृष्णलीला रंग राचे, मिट गई लोक वेद की लाज ।।२।।

✲ पद ✲

आज महामंगल भयो माई ।
प्रगटे श्रीनिंबारक स्वामी, आनंद कह्यो न जाई ।।

ज्ञान विराग भक्ति सबहिन को, दियो कृपा करि आई ।
'प्रियासखी' जन भये मनचिते, अभै निसान बजाई ।।३।।

✽ पद ✽

नमो नमो जै श्रीभट देव ।
रसिक अनन्य जुगल पद सेवी, जानत श्रीवृंदावन भेव ।।
राधावर बिन आन न जानत, नाम रटै निसदिन यह टेव ।
प्रेम रंग नागर सुख सागर, श्रीगुरु भक्ति सिरोमनि सेव ।।४।।

✽ पद ✽

नमो नमो जै श्रीहरिव्यास ।
नमो नमो जै श्रीराधा–माधव, राधा–सर्वेश्वर सुखरास ।।
नमो नमो जै श्रीवृंदावन, जमुना पुलिन निकुंज निवास ।
'रसिकगोविंद' अभिराम स्याम भज, नमो नमो रसरासविलास।।५।।

श्रीयुगलशतक, महावाणी, श्रीहरिव्यास यशामृत, श्रीगोविन्दशरण-देवाचार्य एवं श्रीनागरीदासजी की वाणी से संकलित पद–

✽ पद ✽

श्रीनिम्बार्क दीनबंधु सुन पुकार मेरी।
पतितन में पतित नाथ सरन आयोतेरी।।
तात मात भगिनी भ्रात परिजन समुदाई।
सबही संबंध त्याग आयौ सरनाई।।
काम क्रोध लोभ मोह दावानल भारी।
निसदिन हौं जरौ नाथ लीजियै उबारी।।
अंबरीष भक्त जानि रच्छा करि धाई।
तैसेई निजदास जानि राखौ सरनाई।।
भक्त बछल नाम नाथ वेदनि में गायौ।
'श्रीभट' तब चरन परसि अभैदान पायौ।।१।।

✻ पद ✻

जो कोउ प्रभु के आश्रय आवैं। सो अन्याश्रय सब छिटकावैं।।
बिधि–निषेध के जे जे धर्म। तिनिको त्यागि रहें निष्कर्म।।
झूठ क्रोध निंदा तजि देंही। बिन प्रसाद मुख और न लेंही।।
सब जीवनि पर करुना राखैं। कबहुँ कठोर बचन नहिं भाखैं।।
मन माधुर्य–रस माहिं समोवैं। घरी पहर पल वृथा न खोवैं।।
सतगुरु के मारग पगु–धारैं। हरि सतगुरु बिचि भेद न पारैं।।
ए द्वादस–लच्छन अवगाहै। जे जन परा परम–पद चाहैं।।
जाकें दस पैड़ी अति दृढ़ि हैं। बिन अधिकार कौन तहाँ चढ़ि हैं।।
पहले रसिकजनन कों सेवैं। दूजी दया हिये धरि लेवैं।।
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि हैं। चौथी कथा अतृप्त है सुनि हैं।।
पंचमि पद पंकज अनुरागैं। षष्टी रूप अधिकता पागैं।।
सप्तमी प्रेम हिये विरधावैं। अष्टमि रूप ध्यान गुन गावैं।।
नवमी दृढ़ता निश्चै गहिबें। दसमी रस की सरिता बहिबें।।
या अनुक्रम करि जे अनुसरहीं। सनै–सनै जगतें निरबरहीं।।
परमधाम परिकर मधि बसहीं। "श्रीहरिप्रिया" हितू संग लसही।।२।।

✻ पद ✻

स्यामा–स्याम पद पावै सोई।
मन–बच–क्रम करि सदा निरंतर, हरि–गुरु–पद–पंकज रति होई।।
नंद–सुवन वृषभानु सुता पद, भजै तजै मन आनै जोई।
"श्रीभट" अटकि रहे स्वामी पन, आन कहैं मानै सब छोई।।३।।

✻ पद ✻

जिनकें सर्बस जुगल किसोर।
तिहिं समान अस को बड़भागनि, गनि सबके सिरमोर।।
नित्य–बिहार निरंतर जाकौ, करत पान निसभोर।
"श्रीहरिप्रिया" निहारत छिन–छिन, चितै चखिन की कोर।।४।।

✲ पद ✲

जिनके यहै अनन्य उपास।
तिनकौ प्रिया–लाल नित हित, करि राखैं अपने पास।।
माया त्रिगुन प्रपंच पवन की, अंच न आवैं तास।
''श्रीहरिप्रिया'' निपट अनुवर्तिनि, ह्वै निरखैं सुखरास।।५।।

✲ पद ✲

जै जै वृंदाबन आनंद मूल।
नाम लेत पावत जु प्रनैरति, जुगल किसोर देत निज कूल।।
सरन आये पाये राधाधव, मिटी अनेक जनम की भूल।
ऐसैं जानि वृंदाबन 'श्रीभट', रज पै वारि कोटि मख तूल।।६।।

✲ पद ✲

जै जै वृंदाबन रजधानी।
जहाँ विराजत मोहन राजा, श्रीराधा–सी रानी।।
सदा सनातन इकरस जोरी, महिमा निगम न जानी।
''श्रीहरिप्रिया'' हितू निज दासी, रहति सदा अगवानी।।७।।

पद ✲

सेऊँ श्रीवृंदाविपिन विलास।
जहाँ जुगल मिलि मंगल मूरति, करत निरंतर वास।।
प्रेम–प्रवाह रसिकजन प्यारे, कबहुँ न छाँड़त पास।
कहा कहौं भाग की 'श्रीभट' राधाकृष्ण रस चास।।८।।

✲ पद ✲

धन–धन वृंदावन जिनको मन।
वृंदावन हित तरफत व्याकुल, परबस दूरि धर्‌यों तन।।
वृंदावन कौ ध्यान हिये मैं, वृन्दावन को गावैं।
वृंदावन वासिन सौं ''नागर'', प्रेम पुलकि टपटावैं।।९।।

॰ पद ॰

रे मन वृंदाविपिन निहार।
जद्दपि मिलै कोटि चिंतामनि, तदपि न हाथ पसार।।
बिपिनराज सीमा के बाहिर, हरिहू कों न निहार।
जै 'श्रीभट्ट' धूरि धूसर तन, यह आसा उर धार।।१०।।

॰ पद ॰

अब तो कृपा करो श्रीराधा।
वृंदाविपिन बसौं श्रीस्वामिनि, छाँड़ि जगत की बाधा।।
तीन लोक गावत वा बन की, लीला ललित अगाधा।
"नागरिया" पैं तनक ढरे तैं, होय सहज सुख साधा।।११।।

॰ पद ॰

मंगल मूल राधिका रानी।
मंगल स्याम स्थंभ सखीसब, दीरघ लघु साखा सुखदानी।।
पात सुगुन पुस्पित मँद मुस्कानि, सुफल अर्थ पूरन परमानी।
सुरस प्रेम पीवत अमृत सम, नेह बेलि चहुँघा लपटानी।।
छाया सरनि संत पंछीगन, बोलत मधुर सुधारस बानी।
"रूपरसिक" कहैं कलपवृक्ष कहा, अद्‌भुत गति या तरुकी जानी।।१२।।

॰ पद ॰

मो चित लगौ नित इहि ठाम, प्रियाजू के काम।।
नैंन राधे बसौ मूरति बैंन राधे नाम।
श्रवन राधे सुजस कीरति हृदै में विश्राम।।
कर लगौ परिचर्जा हू में पद लगौ परिक्राम।
मधुप ह्वै मन रमौ मो इहि विपिन में अभिराम।।
टरहु जिन इनि ठौर हू तें अहु–निसा सब जाम।
चरन–रज "श्रीहरिप्रिया" की करौ सिर पर धाम।।१३।।

❋ पद ❋

राधे जू मेरौ जनम सुधारौ। अब मोहि वृंदावन में डारौ।।
महा–अपावन खान औगुन की, ऐसी जान न बिसारौ।
निरबल दीन जान अपनावौ, ये ही बिरद संभारौ।।
जनम–जनम घर जाई चेरी, अब कहा देत हौ टारौ।
''गोविंदसरन'' मोस्युँ कृपा कीज्यौ, गहौक्यों न हाथ हमारौ।।१४।।

❋ पद ❋

तजिये तो निंदा कौ तजिये। सजिये तो संतोषहि सजिये।।
रजिये तो रसिकन संग रजिये। भजिये तो हरिव्यासहिभजिये।।
छजियेतो इह छाजहिं छजिये। ''रूपरसिक'' राधा पद जजिये।।१५।।

❋ पद ❋

जुगल जस गाय गाय जीजियें।
या जगमें बलि जाउँ अहो अब, जीवन फल लीजियें।।
निरखि–निरखि नैननि सुख संपति, सहज सुकृत कीजिये।
''श्रीहरिप्रिया'' बदन पर पानी, वारि–वारि पीजिये।।१६।।



नवधा - भक्ति

भक्ति के चौंसठ अंगों में 'नवधा भक्ति' श्रेष्ठ है । भक्त प्रहलाद ने श्रीभागवत (७/५/२३-२४) में नवधा भक्ति को उत्तम बताया-

श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।
इति पुसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।
क्रियते भगवत्द्धा तन्मयेऽधीतमुत्तमम् ।।

१. श्रवण -श्रीसर्वेश्वर के नाम-रूप-गुण-परिकर-लीला सम्बन्धी शब्दों का कानों से स्पर्श ।

२. कीर्तन - श्रीसर्वेश्वर के नाम-रूप-गुण-परिकर-लीलामय शब्दों का उच्चस्वर में गान या उच्चारण ।

३. स्मरण - श्रीसर्वेश्वर के नाम-रूप-गुण-परिकर-लीला आदि का चिन्तन अर्थात् मन के द्वारा उनका यत्किञ्चित् अनुसन्धान ।

४. पादसेवन - श्रीहरिचरण की काल-देश आदि के अनुरूप उचित सेवा करना ।

५. अर्चन - श्रीसर्वेश्वर की अथवा उनके श्रीविग्रह की शास्त्र में बतायी विधि के अनुसार पूजा।

६. वन्दन - श्रीसर्वेश्वर के प्रति नमस्कार करना ।

७. दास्य - 'मैं श्रीहरि का दास हूँ'-ऐसा अभिमान और उसके अनुरूप उनकी सेवा करना।

८. सख्य - बन्धुभाव से श्रीसर्वेश्वर का हित सम्पादन करना ।

९. आत्मनिवेदन - शरीर से लेकर शुद्ध आत्मा पर्यन्त सर्वतोभाव से श्रीसर्वेश्वर को अपर्ण कर देना।

श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए ही यदि उन नौ लक्षणों वाली भक्ति-क्रियाओं को किया जाता है, न कि धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति के लिए, तो ऐसी भक्ति को करने वाले के अध्ययन को, या हृदयंगम करने को श्रीप्रहलादजी कहते हैं, मैं उत्तम मानता हूँ।

श्रीगोपालतापनी श्रुति (पृ० १८) में कहा गया है-"भक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधि- नैरास्येनामुष्मिन् मनःकल्पनमेतदेव च नैष्कर्म्यम् ।" अर्थात् श्रीसर्वेश्वर के भजन को ही भक्ति कहते हैं । भजन का अर्थ है कि इस लोक और परलोक की सभी कामनाओं-वासनाओं को छोड़कर मन को श्रीहरि में लगाना। यही वास्तविक निष्कर्मता है । इसी से कर्मों के बन्धन में नहीं आना पड़ता ।

साधन रूपा इन नौ प्रकार की भक्ति करने से साधक का अन्तःकरण निर्मल हो जाता है और उसके चित्त में शनै-शनै श्रीहरि के नाम, रूप, लीला व धाम के प्रति प्रेम का प्रादुर्भाव होने लगता है । इसीलिए श्रीभगवत रसिकदेवजी कहते हैं कि -

" प्रथम सुनै भागौत भक्त मुख बानी ।
द्वितीय आराधै भक्ति ब्यास नव भाँति बखानी ।।"

जब तक साधक के हृदय में "प्रेमाभक्ति" का प्राकट्य नहीं होता तब तक उसे साधन-पथ का परित्याग कदापि नहीं करना चाहिए । वर्तमान समय में इस प्रकार के कहने वाले अधिकतर है कि हमने "विधि-निषेध" का त्याग कर दिया है । जिसने कभी भी विधि-विधान का पालन ही न

किया हो, भला उसका कैसा त्याग । प्रिया–प्रियतम की कृपा से जब जीव को प्रेम प्रदान होता है तब उस दशा में प्रेमी के नियम स्वतः ही छूट जाते है । उसे कुछ भी छोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती–

एक नेम या प्रेम को, सबै नेम छूटि जाय ।
जो कोउ छोड़े जानिके, सो नहिं प्रेम कहाय ।।

श्रीनिम्बार्क भगवान् 'वेदान्त–दशश्लोकी' के नवम श्लोक में कहते हैं–जिनमें दीनता, नम्रता, सरलता आदि सद्गुण हो उन भक्तों पर ही श्रीराधासर्वेश्वरजू की कृपा होती है । उनकी कृपा से श्रीयुगलवर के पादपद्मों में जो अनुराग उदय होता है वही फलरूपा एवं प्रेमलक्षणा उत्तमा "पराभक्ति" कही गई है । सत्संग एवं श्रद्धा से उत्पन्न होनेवाली साधनरूपा "अपराभक्ति" कहलाती है ।

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा ।
भक्तिह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधनरूपिकापरा ।।

दस नामापराध– श्रीपद्मपुराण के अनुसार

१. सत्पुरुषों की निन्दा ।
२. श्रीविष्णु के नाम–गुण आदि से श्रीशिव के नाम आदि को स्वतन्त्र या अलग मानना।
३. श्रीगुरुदेव एवं अन्यान्य गुरुजनों की अवज्ञा करना ।
४. श्रुति और उसके अनुगत शास्त्रों की निन्दा या अवहेलना करना ।
५. श्रीहरिनाम की महिमा को केवल अर्थवाद समझना ।
६. श्रीहरिनाम की महिमा में प्रकारान्तर द्वारा अर्थ की कल्पना ।
७. श्रीनाम के बल से पाप में प्रवृत्त होना ।
८. श्रीनाम को धर्म–व्रत–त्याग–यज्ञ आदि अन्य शुभ क्रियाओं के समान मानना ।
९. अश्रद्धालु, विमुख और सुनना न चाहने वालों को श्रीनाम का बार–बार उपदेश करना।
१०. श्रीनाम के अतुलित माहात्म्य को सुनकर श्रीनाम में प्रीति का न होना और मैं और मेरे के चक्कर में पड़े रहना ।

श्रीपद्मपुराण के अनुसार इन नाम अपराधों का प्रायश्चित केवल नाम द्वारा ही बताया गया है । इसके निवारण का दूसरा कोई प्रायश्चित नहीं है ।

प्रमाद के कारण यदि सन्तों के प्रति अपराध हो जाये, तब उन सन्तों कि प्रसन्नता के लिए भी निरन्तर श्रीनाम–कीर्तन आदि करना ही बहुत बढ़िया है कारण अम्बरीष चरित आदि में देखने में आता है कि अपराध एकमात्र नाम कीर्तन से ही क्षम्य होते है । नाम कौमुदी में भी बताया गया है–'महदपराधस्य भोग एवं निवर्तकस्तदनग्रहो वा ।' अर्थात् महापुरुषों के प्रति हुए अपराध की निवृत्ति या तो उसका फल भोग लेने से होती है या उन महापुरुषों के अनुग्रह से ।

सेवा–अपराध

पादसेवन और अर्चन भक्ति मार्गो में निम्नलिखित वत्तीस अपराधों का त्याग कर देना चाहिए–

१. सवारी पर चढ़कर अथवा जूता–खड़ाऊँ पहनकर श्रीभगवान् के मन्दिर में जाना। २. जन्माष्टमी, रामनवमी, रथयात्रा आदि श्रीभगवान् के उत्सवोंका न करना या उनके दर्शन न करना। ३. श्रीमूर्ति के दर्शन करके प्रणाम न करना। ४. उच्छिष्ट अथवा अपवित्र अवस्था में श्रीभगवान् के

दर्शन करना। ५. एक हाथ से प्रणाम करना। ६. उनके सामने घूमकर, पीठ दिखाकर प्रदक्षिणा करना। ७. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के सामने पैर पसारकर बैठना। ८. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के सामने दोनों घुटनों को ऊँचा करके उनको हाथों से लपेटकर बैठना, ६. श्रीविग्रह के सामने सोजाना, १०. भोजन करना, ११. झूठ बोलना, १२. जोर से बोलना, १३. आपस में बातचीत करना, १४. सांसारिक दुःखसे रोना, १५. कलह करना १६. किसी को पीड़ा देना, १७. किसी पर अनुग्रह करना, १८. श्रीभगवान्के श्रीविग्रह के सामने किसी को निष्ठुर वचन बोलना, १६. कम्बल से सारा शरीर ढक लेना, २०. दूसरे की निन्दा करना, २१. दूसरे की स्तुति करना, २२. अश्लील शब्द बोलना, २३. अधो–वायु का त्याग करना, २४. सामर्थ्य होने पर भी गौण अर्थात् सामान्य उपचारों से श्रीभगवान् की सेवा पूजा करना, २५. श्रीभगवान् को निवेदन किये बिना किसी भी वस्तु का खाना–पीना, २६. जिस ऋतु का जो फल है, उस समय उसे श्रीभगवान् को अर्पण न करना। २७. लाये गये द्रव्य का पहला भाग किसी और को देकर, बचे हुए को श्रीभगवान् के भोग–व्यञ्जन में व्यवहार करना, २८. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह की ओर पीठ करके बैठना, २६. श्रीभगवान्के श्रीविग्रह के सामने दूसरे किसी को भी प्रणाम करना, ३०. श्रीगुरु की कोई दूसरा व्यक्ति जब स्तुति कर रहा हो तो मौनी बने रहना। ३१. अपने मुख से अपनी प्रशंसा करना, ३२ किसी भी देवता की निन्दा करना।

सेवापराध श्रीवराह–पुराण के अनुसार–

१. राजा का अन्न भक्षण करना २. अन्धेरे घर में श्रीमूर्ति का स्पर्श करना ३. विधि नियमों का पालन किये बिना, उनको न मानकर श्रीहरि के (श्रीविग्रह के) समीप जाना और सहसा उनके दर्शन करलेना ४. बाजा (ताली) बजाये बिना ही श्रीमन्दिर के द्वार खोलना ५. माँस आदि अभक्ष्य वस्तुएँ निवेदन करना ६. पादुका सहित श्रीभगवान् के मन्दिरमें जाना ७. कुत्ते के झूठे को छूना ८. जिस पर कुत्ते की दृष्टि पड़ गयी हो, ऐसी वस्तु को भोग के लिए संग्रह करना ६. पूजा करते समय मौन तोड़ना १०. पूजा के समय मल–त्याग के लिए जाना ११. गन्ध, पुष्प–माला आदि दिये बिना धूप देना १२. अवैध ा–निषिद्ध पुष्पों से श्रीभगवान् की पूजा करना १३. दतुवन किये बिना श्रीभगवान् की पूजा करना १५. रजस्वला–स्त्री का स्पर्श करके श्रीभगवान् की पूजा या उनका स्पर्श करना १६. दीपक का स्पर्श करके श्रीभगवान् की पूजा या उनका स्पर्श करना। १७. मृतक का स्पर्श करके श्रीभगवान् की पूजा या उनका स्पर्श करना १८. लाल वस्त्र पहनकर श्रीभगवान् की पूजा करना १६. नीला वस्त्र पहनकर श्रीभगवान् की पूजा करना २०. बिना धोया वस्त्र पहनकर श्रीभगवान की पूजा करना २१. दूसरे का वस्त्र पहनकर श्रीभगवान् की पूजा करना २२. मैला वस्त्र पहनकर श्रीभगवान् की पूजा करना २३. शव को देखकर श्रीभगवान् की पूजा या उनका स्पर्श करना २४. अधो–वायु को छोड़कर श्रीभगवान् की पूजा करना २५. क्रोध करके श्रीभगवान् की पूजा करना २६. श्मशान में जाकर श्रीभगवान्की पूजा करना या उनका स्पर्श करना २७. खाया हुआ अन्न पचने से पहले दोबारा खाकर पूजा करना २८. कुसुम्भ साग खाकर श्रीभगवान् की पूजा करना २६. कुसुम्भ अर्थात् गांजा खाकर पूजा करना ३०. पिण्याक अर्थात् अफीम या दूसरे नशीले पदार्थों का सेवन करके पूजा करना ३१. पिण्याक अर्थात् हींग या दूसरे दुर्गन्ध युक्त पदार्थों का सेवन करके पूजा करना ३२. शरीर में तेल मलकर श्रीभगवान् के श्रीविग्रह की पूजा करना या उनका स्पर्श करना।

वराह–पुराण में दूसरे स्थान पर भी कुछ और सेवापराधों का उल्लेख है–

१. भगवत्–शास्त्रों का अनादर करके श्रीभगवान् की पूजा का अनुष्ठान करना २. भगवत्–शास्त्रों

को न मानकर दूसरे शास्त्रों के अनुसार चलना ३. शराबी का स्पर्श करके श्रीविष्णु मन्दिर में प्रवेश करना ४. शराबी के साथ सम्भाषण करके श्रीविष्णु मन्दिर में प्रवेश करना ५. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के सामने पान चबाना ६. आक के फूलों से ७. एरण्ड के फूलों से ८. ढाक के फूलों से ६. कुरुवक के फूलों से १०. आसुरकाल में ११. चौकी पर बैठकर १२. भूमि पर बैठकर १३. बासी फूलों से १४. शक्ति होते हुए भी, मांगे हुए फूलों से श्रीभगवान्‌की पूजा करना, १५. स्नान कराते समय बायें हाथ से श्रीमूर्ति का स्पर्श करना १६. पूजन करते समय श्रीभवगान् के मन्दिरमें थूक देना १७. पूजा के सम्बन्ध में अपने गर्व का प्रतिपादन करना १८. ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण न करके त्रिपुण्ड्र तिलक करना १६. पैर धोये बिना श्रीभगवान् के मन्दिर में प्रवेश करना। २०. श्रीभगवान् को अवैष्णव द्वारा पकायी गयी वस्तुका निवेदन करना २१. अवैष्णव के सामने श्रीभगवान् की पूजा करना २२. अप्राकृत वैकुण्ठ के आवरण देवता विघ्नेश–गणेश का पूजन किये बिना श्रीभगवान् की पूजा करना २३. कपाली को देखकर श्रीभगवान् की पूजा करना २४. नख द्वारा छुए गये जल द्वारा श्रीभगवान् के श्रीविग्रह को स्नान कराना २५. पसीने से लिप्त शरीर से श्रीभगवान् की पूजा करना।

अन्य शास्त्रों में बताये गये कुछ सेवापराध–

१. श्रीहरि की निर्माल्य का लंघन (निरादर) करना २. श्रीभगवान् की शपथ करना ३. नाना देवताओं की निर्माल्य का उपयोग करना ४. साधु सम्मत आचार का पालन न करना ५. शास्त्रों में कहे गये विधि–विधान को न मानना।

अपराध–शमन

ऊपर लिखे सेवा अपराधों का एकसाथ विवेचन करने से यह लगता है कि जिस किसी आचरण से श्रीविग्रह के प्रति अश्रद्धा, अवज्ञा, मर्यादा–भंग अथवा प्रेम का अभाव प्रकाशित हो, साधारणतः वही सेवा–अपराध होता है। सेवा अपराधों को पूरी कोशिश से छोड़ना चाहिए। फिर भी यदि प्रमाद से श्रीभगवान् के प्रति अपराध हो जाय तो श्रीभगवान् को फिर से प्रसन्न करना चाहिए। जैसा कि स्कन्द–पुराण के अवन्तीखण्ड में लिखा है–

सहस्रनाम–माहात्म्यं यः पठेत् श्रृणुयादपि।
अपराधसहस्रेण न स लिप्येत् कदाचन।।

'जो व्यक्ति सहस्रनाम–माहात्म्य का पाठ करता है, या सुनता भी है, वह असंख्य अपराधो से कभी लिप्त नहीं होता।' स्कन्द पुराण में दूसरे स्थान पर लिखा है–

तुलस्या रोपणं कार्य श्रवणेन विशेषतः।
अपराधसहस्राणि क्षमते पुरुषोत्तमः।।

तुलसी का रोपण करने से और विशेषरूप से श्रीहरिनाम आदि का श्रवण करने से श्रीपुरुषोत्तम हजारों अपराध क्षमा कर देते हैं।' ब्रह्मपुराण में कहा गया है–

यः करोति हरेः पूजां कृष्णशस्त्रांकितो नरः।
अपराध–सहस्राणि नित्यं हरति केशवः।।

'श्रीकृष्ण के शंख–चक्र–गदादि शस्त्रों से अंकित होकर जो पुरुष श्रीहरि की पूजा करता है, श्रीकेशव उसके हजारों अपराध नित्य हरण कर लेते हैं'

।। श्रीवृन्दावनधाम मञ्जरी ।।

प्रथम वंदि हरिव्यास पद, श्रीवृंदावन धाम ।
महिमा मंजरि लिखत हौं, पुनि भजि स्यामा स्याम ।।
स्यामा स्याम बिहार निज, वृंदाविपिन उदार ।
अर्ब खर्ब वैकुण्ठ कौ, गर्व मिटावत हार ।।
जै वृंदावन धाम निज, सकल लोक सिरताज ।
सर्वेश्वर सर्वेश्वरी, तहाँ करत जुवराज ।।
अवधादिक हरिधाम को, फल वैकुंठ कहंत ।
वन रज ऊपर वारिये, सो वैकुंठ अनंत ।।
जै जै जै वृंदाविपिन, कालिन्दी तट रम्य ।
हरिव्यास की कृपा बिनु, सबको महा अगम्य ।।
परम सच्चिदानंद घन, श्रीवृंदावन धाम ।
श्रीहरिप्रिया कृपा बिनु, को पावै वा ठाम ।।
सब तैं परे गोलोक है, तातैं पर बनराज ।
दंपति सुख संपति जहाँ, श्रीहरिप्रिया समाज ।।
अज अव्यय अविनासी पद, हद बेहद लों दूर।
श्रीवृंदावन धाम है, रसिकन जीवन मूर ।।
जयति जयति नम जयति नम, श्रीवृंदावन बाग ।
जामें प्यारी पीय को, अविचल सदा सुहाग ।।
श्रीवृंदावन धाम की, महिमा मंजरि नाम ।
'रूपरसिक' गावै सुनै, सो पावै सुख धाम ।।
इति श्रीरूपरसिक की, रति सख्या दोहानि ।
वनपति महिमा मंजरी, पूरणता सुख खानि ।।

।। इति श्रीरूपरसिकदेवजी कृत श्रीवृन्दावनधाम महिमा मंजरी सम्पूर्ण ।।

****